सबला

सेवाग्राम विकास संस्थान, नई दिल्ली

वर्ष 7 : अंक 4 दिसंबर-जनवरी, 1995

सहयोग मंडल

कमला भसीन

मणिमाला

ज्ञानेंद्र प्रसाद जैन

संपादिका

शारदा जैन

उप-संपादिका

वीणा शिवपुरी

जुही

चित्रांकन

बिंदिया थापर

वितरण

प्रतिभा गुप्ता

ग्रामीण बहनों की द्विमासिक पत्रिका—शिक्षा विभाग, मानव संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा अनुदानप्रदत्त; डाक्टर शारदा जैन (सेवा ग्राम विकास संस्थान, 1 दरियागंज, नई दिल्ली-110 002) द्वारा संपादित व प्रकाशित तथा इन्द्रप्रस्थ प्रैस (सी. बी. टी.), नेहरू हाउस, 4 बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 में मुद्रित।

इस अंक में

हमारी बात	1
आज तो तुम्हारा है बेटी (कविता) —आदर्श सभलोक	2
तू खुद को बदल... —कमला भसीन	3
पंचायतों में औरतों की भागीदारी —मणिमाला	7
सबला संघ—महिला पंचायत —सुहास कुमार	10
कुछ ग़लत हो गया तो (कविता)	13
दूध का कर्ज़ —वीणा शिवपुरी	14
इंसान बनने से परहेज़ क्यों?	16
नया साल नई शक्ति देगा —मणिमाला	18
लड़की, तुम स्कूल क्यों नहीं जातीं? —विक्रम जनबन्धु	20
इज़्ज़त से जीना चाहती हूं —जुही	21
दोषी कौन? —अनिता ठैनुआ	24
हारोहाली ट्रेनिंग इन्स्टीट्यूट —आदर्श सभलोक	27
नथिया ने अगुवाई की —जुही	29
नीलम की चतुराई	31
इलाज के पारंपरिक तरीक़े	33
सबला के लेखों पर चर्चा	35

स्त्री और पुरुष एक गाड़ी के दो पहिए हैं। जब तक उनमें आपसी तालमेल और बराबरी नहीं होगी, गाड़ी ठीक से नहीं चल सकती। यह बात चाहे कितनी ही पुरानी और घिसीपिटी लगे पर है पूरे सौ पैसे खरी। इसलिए जहां एक तरफ औरत की चेतना और शिक्षा की बात हम करते हैं, वहीं पुरुषों की बात करना भी ज़रूरी है।

औरतों की चेतना के साथ अगर पुरुष कदम न मिला सके तो तनाव और टकराहट बढ़ेगी। सच्चाई के रास्ते पर टकराहट से डर नहीं। लेकिन समाज में तनाव और टकराव पैदा करना मक़सद नहीं है।

बेहतर यही है कि पुरुष भी समय के साथ अपने रवैयों में बदलाव लाएं ताकि समाज में शांतिपूर्ण बदलाव आ सके। ऐसा बदलाव जो न सिर्फ उन दोनों के भले के लिए हो, बल्कि पूरे समाज, देश और आने वाली पीढ़ियों के भले के लिए हो।

हम मानते है कि किसी सत्ताधारी के लिए अपनी सत्ता छोड़ना आसान नहीं है। परंतु समझदारी इसी में है कि बदलते समय के साथ राज़ीखुशी बदला जाए। वरना सत्ता छीन ली जाती है। मन-मुटाव और दुश्मनी पैदा होती है। किसी भी समूह को अनंतकाल के लिए शोषित और दबा हुआ रखना संभव नहीं है। दोस्ती और सहयोग का रास्ता ही आज की मांग है। एक क़दम हम बढ़े हैं, एक कदम आप आइए। मिल कर इस दुनिया को एक बेहतर दुनिया बनाएं।

—वीणा शिवपुरी

आज तो तुम्हारा है बेटी

मैं डरी रही, मैं सहमी रही
मैं घुटती रही, मैं खटती रही
पर यह तो कल की बात है।
आज तो तुम्हारा है बेटी
गौरव से सिर उठा कर
जब तुम चलती हो
तो मुझे अच्छा लगता है।
अज्ञानता को छोड़ कर
पुराने बंधनों को तोड़ कर
गांव में पल कर भी
जब तुम डाक्टर, इन्जीनियर बनती हो
तो मुझे अच्छा लगता है।
घूंघट ओढ़े मस्तक तक
पर मन में लिए हुए
इरादे बुलंद
जब कंधे से कंधा मिला कर
पुरुष के साथ तुम चलती हो
तो मुझे अच्छा लगता है।
कभी अपनी तेज़ रफ्तार
से भागते हुए
तुम पुरुषों से भी
आगे बढ़ जाती हो
और ढेरों सम्मान लेकर
अपने देश का नाम
तुम रोशन करती हो
प्यार देना भी तेरी शक्ति है
ज़ुल्म न सहना भी तेरी शक्ति है
अपने हक़ की लड़ाई में
जब कतार में खड़ी
सबसे आगे तुम मुझे दिखती हो
तो मुझे अच्छा लगता है।
मैं फूल बनी या कली ही रही
यह तो कल की बात है
आज तो तुम्हारा है बेटी
भविष्य भी तुम्हारा है बेटी!
अपनी राहों पर जब
तुम दिए जलाती चलती हो
तो मुझे अच्छा लगता है
तुम्हें फूल सा खिला देख
मुझे अच्छा लगता है।

—आदर्श सभलोक

तू खुद को बदल, तू खुद को बदल, तब ही तो ज़माना बदलेगा

कमला भसीन

हमें बार-बार, चारों तरफ़ से यह सुनाई पड़ता है कि औरत की हालत और उसका दर्जा सुधारने की ज़रूरत है। यह करने के लिये हमें सामाजिक रीति-रिवाज बदलने हैं, शायद धार्मिक सोच भी बदलनी हो। लोगों के सोचने के तरीक़े, उनका रवैया और व्यवहार भी बदलना है।

जब भी बदलाव लाने की जरूरत पर बात होती है तो बहुत-सी औरतें बड़ी ईमानदारी से यह कहती हैं ''पर इस तरह के बड़े बदलाव के लिये हम साधारण औरतें भला क्या कर सकती हैं? यह काम तो नेताओं या हुकमरानों के करने के हैं।''

यह विचार मन में आना स्वाभाविक है क्योंकि ज़्यादातर बातें नेताओं की ही होती हैं। इतिहास में भी आम लोगों का ज़िक्र नहीं होता। सिर्फ़ राजा-महाराजाओं, बादशाहों, मन्त्रियों, बड़े नेताओं, विद्वानों, वैज्ञानिकों, सेनापतियों का ही ज़िक्र होता है। इतिहास पढ़ कर तो यह लगता है कि साधारण लोग शायद हुआ ही नहीं करते थे। बड़े-बड़े किले बादशाह खुद ही बना लेते थे। खेती-बाड़ी, मज़दूरी करके हुकमरान खुद ही खज़ाने भर लेते थे या इन सब की बीबियां और वे खुद, अपने हाथों से दस्तकारी कर के खूबसूरत कपड़े, ज़ेवर आदि पहनते थे। साधारण लोगों के काम, उनके योगदान को हमेशा से ही नकारा गया है क्योंकि इतिहास लिखने वाले पढ़े-लिखें और अमीर तबके से थे। सो उन्होंने अपने ही तबके की तूती बजाई। और इतिहास लिखने वाले सभी पुरुष थे, सो औरतों का तो बिल्कुल भी ज़िक्र नहीं है। अगर ग़लती से कहीं किसान, मज़दूर या सिपाही की बात है भी इतिहास में, तो वह मर्दों की बात है।

जड़ों की मज़बूती पर ही पेड़ की मज़बूती निर्भर होती है। जितनी गहरी जड़े होती हैं उतना ही ऊंचा पेड़ उठ सकता है। छोटी जड़ों वाले पेड़ भी छोटे होते हैं।

साधारण लोगों का महत्व

साधारण लोग ही असाधारण काम कर सकते हैं। हमें इतिहास और पूरे समाज के इस रवैये को ठीक से पहचान कर इसे नकारना है। हमें यह समझना है कि ***साधारण लोगों के बिना असाधारण काम हो ही नहीं सकते। क्या करोड़ों स्त्रियों और पुरुषों की शक्ति और सहयोग के बिना महात्मा गांधी अंग्रेज़ों के खिलाफ़ जंग छेड़ सकते थे?*** आज प्रजातंत्र में तो ख़ासतौर से आम लोगों का बहुत बड़ा किरदार है। आम, साधारण स्त्री-पुरुष ही देश की जड़ें हैं, देश उन्हीं से खड़ा है। जड़ों की मज़बूती पर ही पेड़ की मज़बूती निर्भर होती है। जितनी गहरी जड़ें होती हैं उतना ही ऊंचा पेड़ उठ सकता है। छोटी जड़ों वाले पेड़ भी छोटे होते हैं।

वही बदलाव सही और टिकाऊ हो सकते हैं जिनमें समाज के आम लोगों की पूरी भागीदारी हो, जिन्हें आम लोग सही समझें और अपनायें।

ऊपर से थोपे हुये बदलाव कभी रंग नहीं लाते।

इसलिये अगर हम औरतों की स्थिति और स्त्री-पुरुष संबंधों को बदलना चाहते हैं तो हमें शुरुआत खुद से, अपने आप से करनी होगी। कहावत है कि बिना मरे स्वर्ग नहीं मिलता। ठीक इसी तरह बिना करे समाज नहीं बदलता। आप और मैं ही तो समाज हैं। कोई बाहर का तो नहीं है। हम सब समाज हैं, बदलना हम सब को है। औरों के बदलने का इंतज़ार करते रहे तो कुछ शुरू नहीं होगा। अगर हम सब यह कहें "कोई और शुरुआत करें न करें—मैं कर रही हूं," तो शुरुआत हो ही जायेगी।

औरतें अपनी इज्ज़त करें

पुरुष प्रधान समाज ने तो औरतों को दूसरे दर्जे का, कमतर व्यक्ति माना ही है पर हम औरतों ने भी काफी हद तक अपने आप को नीचा समझ लिया है। इसलिये बदलाव का पहला क़दम है हम अपने इस कमतरी के अहसास से छुटकारा पायें। जब हम अपनी इज्ज़त खुद करेंगे तभी दूसरे हमारी इज्ज़त करेंगे। जब हम अपने को एक पूरा इंसान, एक कर्मठ, जुझारू, मेहनती इंसान का दर्जा देंगे तभी दूसरे हमें यह दर्जा देंगे। इसीलिये तो कहा है—

तू खुद को बदल, तू खुद को बदल
तब ही तो ज़माना बदलेगा
तू चुप रह कर जो सहती रही
तो क्या ये ज़माना बदलेगा
तू बोलेगी, मुंह खोलेगी
तब ही तो ज़माना बदलेगा।

अपनी इज्ज़त करने के साथ-साथ हम अपना ध्यान भी रखें। अपने को भी स्वस्थ और खुश रखें। खुद को मिटाकर औरों को खुश रखना मुश्किल है। और ऐसी खुशी सच्ची खुशी है भी नहीं। अगर एक मिट जाये, दुखी रहे और दूसरा खुश हो तो हासिल कुछ नहीं होता। एक का दुख, दूसरे की खुशी को नकार देता है। हासिल होता है शून्य। अगर दोनों खुश हों तभी जोड़ आगे बढ़ता है। अगर दूसरे लोग औरत की खुशी की परवाह नहीं करते तो हमें खुद अपनी खुशी की परवाह करनी होगी।

जब हम अपनी इज्ज़त खुद करेंगे तभी
दूसरे हमारी इज्ज़त करेंगे...
हमें ज्ञान और शिक्षा की रोशनी
से खुद को जगमगाना होगा।
ज्ञान के ज़रिये अपना मान
बढ़ाना होगा।

सशक्त बनें

सशक्त या ताक़तवर बनने के लिये हमें ज्ञान और शिक्षा का सहारा लेना होगा। अपने मस्तिष्क को उजागर करना होगा। ज्ञान की रोशनी से खुद को जगमगाना होगा। यह ठीक नहीं है कि घर के दूसरे सितारे चमकते रहें और हम पर हमेशा बादल ही छाए रहें। कभी बीमारी के, तो कभी दुख, ग्लानि और थकान के और कभी अज्ञान के। जब, जहां, जैसा मौका लगे हमें अपना ज्ञान बढ़ाना होगा, और ज्ञान के ज़रिए अपना मान बढ़ाना होगा, अपना स्थान बनाना होगा।

बूंद-बूंद से सागर

अगला क़दम भी हम परिवार के अंदर ही उठा सकते हैं। परिवार में हम अन्याय न होने दें। अगर परिवार में हमारे साथ, हमारी बेटियों के साथ, देवरानियों, जेठानिओं, सास, ननद के साथ अन्याय होता है तो हम उसे समझें और उसे रोकने की कोशिश करें। अगर हम खुद अपने बेटे और बेटी में भेद करते हैं तो उसे रोकें। कम से कम अपनी बेटी के तो साथी बनें।

शक्ति और पहचान बढ़ाने का एक सस्ता व सरल तरीक़ा यह है कि हम ***अपने जैसे लोगों के साथी बन जायें। एक और एक ग्यारह हो जायें।*** छोटी-सी बूंद अगर अकेली रहेगी तो ज़रा-सी गर्मी से भस्म हो जायेगी, भाप बन कर मिट जायेगी, अपना अस्तित्व गंवा देगी। यदि वह और बूंदों के साथ एक हो जाये तो वह बूंद से पोखर, तालाब, नदी, समुद्र कुछ भी बन सकती है। बूंदें ही तो मिल कर समुद्र-सी महान बनती हैं। पर बड़ा, सशक्त बनने के लिये अपने अहम और स्वार्थ को, अपनी पहचान को भी मिटाना पड़ता है।

अभी हाल ही में आंध्र प्रदेश की ग़रीब, साधारण औरतों ने एक असाधारण आंदोलन चलाया शराब के खिलाफ़। बूंद, बूंद से मिल कर वे एक ऐसा समुद्र बनीं कि उस के सामने शराब के ठेके, ठेकेदार, उनके समर्थक पुलिस वाले और नेता सब बह गये। अकेली औरत भला ये सब कर सकती थी? और जब वो सब मिल कर एक हो गई तो भला उन्हें कोई रोक सकता था?

इसी तरह अगर हम अपने परिवार या गांव में न्याय की किसी भी लड़ाई के लिये एक हो जायें तो जीत हमारी ज़रूर होगी। लेकिन लड़ाई न्याय और सच्चाई के लिये होनी चाहिये।

संगठन बनायें, सतसंग करें

संगठन बनाये बिना ज़्यादा हासिल करना मुश्किल है। और संगठन बनाना मुश्किल नहीं है। औरों के संग हो जायें, संगठन बन जायेगा। औरों से संगम कर लें। अच्छा मिलन, आगे बढ़ने के लिये मिलन, बड़ा बनने के लिये मिलन ही संगम है। दो छोटी नदियां एक दूजे में समाती हैं तो पल भर में दोनों दोगुनी हो जाती हैं और जब अलग

होती हैं तो दोनों आधी रह जाती हैं। तो हमें संग होना है उन सभी औरतों के (और पुरुषों के भी) जिनके साथ अन्याय हो रहा है, या जो कमज़ोर हैं।

सत्य और न्याय के लिये मिलना, मिल कर सोचना ही सतसंग है। सतसंग का मतलब इकट्ठे बैठकर भजन करना ही नहीं होता। सतसंग परलोक के लिये ही नहीं होते। असली सतसंग इस लोक को सुधारने के लिये होते हैं या होने चाहियें।

महिला समूह या स्त्री-पुरुषों के संगठन जो इकट्ठे बैठकर, सत्य और न्याय पर चर्चा करते हैं, सत्य और न्याय के लिये संघर्ष करते हैं, वे भी सतसंगी हैं। नरक में बैठकर स्वर्ग के सपने लेकर, आंखे बंद कर के भजन करना असली सतसंग नहीं है।

असली सतसंग है परिवार, गांव, समाज को बदलने के लिये सतसंग। इसी प्रकार के सतसंग से औरतों ने अपने हालात बदले हैं। कहीं पर पंप ठीक करना सीख कर, गांव को पानी दिलवाया। कहीं संघर्ष कर के जंगल का कटना रुकवाया। कहीं संगठन बना कर नये जंगल लगाये। कहीं पंचायत का मेम्बर बन के स्कूल चलवाए, गांव के लिये शौचालय बनवाये। कहीं बचत योजना चला कर बनिये से पीछा छुड़ाया। ऐसे सतसंग हैं अपने को बदलने के लिये, आस-पड़ौस, गांव, शहर को बदलने के लिये। मिलकर आगे बढ़ने के लिये, दीप जलाने के लिये।

हम साधारण औरतें ये सब कर सकती हैं बिना किसी की इजाज़त के, बिना किसी का रास्ता देखे। तो आओ चलना शुरू करें, संगम करें, सतसंग करें, खुद चमकें, दूसरो को चमकायें। □

पंचायतों में औरतों की भागीदारी रंग लाएगी

मणिमाला

दो साल पहले केंद्र की सरकार ने नया पंचायत कानून बनाया। इस कानून के हिसाब से हर पंचायत में तीस प्रतिशत जगह सिर्फ औरतों के लिए होंगी। यही नियम नगरपालिकाओं के लिए भी होगा। कुछ सरकारें इससे पहले ही तीस प्रतिशत जगह औरतों को देने का फैसला कर चुकी थीं

शुरुआती दौर में बहस

जब यह नियम बनाया गया था तब खूब बहस हुई थी। कुछ लोग कहते थे कि बैसाखी देने से कुछ नहीं होगा। इससे तो औरत और भी कमजोर होगी। दूसरे लोगों को लगेगा कि उनमें अपनी ताकत ही नहीं है। कुछ लोग यह भी कहते थे कि उन्हें ही टिकट मिलेगी जो किसी ताकतवर राजनेता की रिश्तेदार होंगी।

ऐसा नहीं कि हर जगह विरोध ही हुआ था। महिला संगठनों का कहना था कि एक बार भले ही वे बैसाखी से चलें। दूसरी बार चलना-बोलना सीख जायेंगी। यह भी सही है कि पहले ताकतवर लोगों की रिश्तेदार ही चुनाव लड़ेंगी। पर बाद में साधारण औरतें भी उतरेंगी।

सिर्फ बहस नहीं, हिंसा भी

पंचायत में औरतों को जगह देने के सवाल पर सिर्फ बहस नहीं हुई थी। कहीं-कहीं तो हिंसा भी हुई। दो साल पहले उड़ीसा में पंचायत चुनाव हुए थे। कुल बावन लोग इसी सवाल पर मारे गये थे। तीन दफा चुनाव स्थगित करने पड़े थे। जब बम्बई महानगरपालिका के चुनाव होने थे तब शिव सेना के प्रमुख बाल ठाकरे ने कहा था कि अब बम्बई महापालिका वेश्यालय बन जायेगा।

इन सबके बावजूद औरतें चुनाव के मैदान में

आई। चुनी गईं। घर-गृहस्थी के घेरे से बाहर आईं। जन समस्याओं को हल करने का मोर्चा संभाला। भुवनेश्वर महापालिका में तो महापौर और उपमहापौर दोनों ही औरतें बनीं। कोल्हापुर महापालिका में भी महापौर औरत बनीं।

नये अनुभव

उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश में पंचायत चुनाव हुए। ***ऐसा नहीं कि औरतें चुन कर आईं तो समाज बदल गया। लेकिन हां, चर्चा के मुद्दे जरूर बदल गये। बिजली, पानी, बच्चों की पढ़ाई और स्वास्थ्य से संबंधित जो सवाल राजनीति के मकड़जाल में उलझ कर रह जाते थे, उन पर चर्चा होने लगी। सबसे ज़्यादा असर पड़ा आम महिलाओं पर।*** वे गांव पंचायत में रुचि लेने लगीं। कहीं-कहीं तो जमीन से जुड़ी औरतें चुनाव लड़ीं और जीत कर आईं।

महिलाएं और राजनीति

मध्य प्रदेश में सेवा से जुड़ी कई बहनें पंचायत चुनाव जीत कर आईं। 'सेवा इंदौर' की तो तीन कम उम्र औरतों ने सरपंच की जिम्मेदारी संभाली। हमें लगता है कि 'सबला' पढ़ने वाली हमारी बहनों को उनके बारे में जानना चाहिए। इसीलिए उनके बारे में संक्षिप्त जानकारी दे रहे हैं।

प्रेमलता बहन

प्रेमलता बहन कोदरियां पंचायत की सरपंच चुनी गई हैं। वे आठवीं तक पढ़ी हैं। उनके पति नौकरी करते हैं। उनकी शुरू से इच्छा थी कि वे अपने गांव समाज के लिए कुछ करें। उनके घर के बुजुर्गों ने भी उनका साथ दिया। कभी कोई काम करने से नहीं रोका। कभी घर के चौकठे में बांध कर नहीं रखा।

वे स्वयं 'सेवा इंदौर' गईं। 'सेवा इंदौर' की मंत्री मनोरमा जोशी से सलाह मशविरा करके उन्होंने अपने गांव का सर्वेक्षण किया। फिर बालवाड़ी शुरू की। उसके बाद बचत समिति बनाई। वे अपने गांव में काफी लोकप्रिय हो गईं। गांव के लोग उन्हें इतना प्यार करने लगे कि सरपंच पद के लिए खड़ी होने की सलाह देने लगे। वे खड़ी हुईं। ग्रामीणों तथा 'सेवा' इंदौर की मदद से वे जीत गईं। उनकी उम्र महज छब्बीस साल है।

तेजु बहन

तेजु बहन इंदौर के ही अहीर खेड़ी की सरपंच चुनी गईं। बचपन में ही उनके साथ एक दुर्घटना हो गई थी। तीन साल की थी तब रेल दुर्घटना के चपेट में आ गईं। अजमेर अस्पताल में भर्ती हुईं। जब अस्पताल से बाहर निकलीं तो बैसाखी के सहारे। एक पांव घुटने से काटना पड़ा था।

आज के जमाने में जब कोई अच्छी-खासी लड़कियों से ब्याह नहीं करता तो लंगड़ी बेटी से कौन ब्याह करेगा, यह चिंता उनके मां-बाप को सताती रहती। इसी चिंता के मारे उन्होंने पांच साल की उम्र में उनका ब्याह कर दिया। तकदीर ने फिर एक बार दांव खेला। नौ साल की उम्र में वे विधवा हो गईं। पति गुजर गया। वापस पीहर आ गईं।

लड़की का असली घर ससुराल होता है। पति नहीं तो कुछ नहीं। ऐसा ही मानते रहे उसके माता-पिता। सो, एक बार फिर अपनी बेटी की शादी कर दी। दूल्हे का चाल-चलन नहीं देखा। घर-परिवार नहीं देखा। अट्ठारह साल की उम्र में जब दोबारा ससुराल गई तब दुखों का पहाड़ खड़ा था उसकी अगवानी के लिए।

पति जुआरी, शराबी और नाकारा निकला। घर में दाना नहीं। चूल्हे में आग नहीं। लेकिन मार-पीट, गाली-फजीहत रोज-रोज। कई साल निकाल दिये इसी में। इस बीच तीन बच्चे भी हुए। दो बेटियां। एक बेटा। उन्हें बड़ी ख्वाहिश थी कि उनके बच्चों की तकदीर उनकी तरह न हो।

अपने बच्चों की तकदीर बदलने का सपना लिए वे 'सेवा' के कार्यकर्ताओं से मिलीं, सेवा की सदस्य बनीं। कार्यकर्ता बनीं। पांचवीं तक पढ़ाई की। सेवा द्वारा संचालित बालवाड़ी की शिक्षिका बनीं। इसी साल 836 मतों से जीत कर अपने गांव की सरपंच बनीं। अट्ठाईस साल की तेजु बहन जब तीन साल की थीं पांव गवां कर बैसाखी पर चलना सीखा था। आज लकड़ी की बैसाखी भले ही हो, बाकी सारी बैसाखियां छोड़ चुकी हैं वे।

शशि बहन गामोड़

तेजु बहन की तरह ही मुसीबतों का सामना करते करते शशि बहन ने एक दिन अपनी नन्ही बिटिया की तकदीर खुद लिखने की ठान ली। छोटी सी बेटी को गोद में लिए चली आई थी 'सेवा' के दफ्तर। सेवा ने बालवाड़ी में पढ़ाने का काम उन्हें सौंपा। बड़े ही आत्मविश्वास और समर्पण की भावना के साथ उन्होंने बालवाड़ी और महिला मंडल का काम संभाला।

जब वे 'सेवा' के दफ्तर में आईं थीं तो उनका सपना था अपनी बेटी को अपने पैरों पर खड़ा करना। आज उनका सपना बन गया है गांव को स्वावलंबी बनाना। उनका यह सपना सबको अच्छा लगा। सबको अपना लगा।

इस साल गांव वालों ने उन्हें सरपंच का चुनाव लड़ने को कहा। वे लड़ीं। जीत गईं। अभी पच्चीस साल की हैं। सिर्फ पच्चीस साल की। गांव को बेहतर बनाने में जुट गई हैं। उन्हें यकीन है कि उनकी बेटी भी बड़ी होकर इस सपने को साकार करने में लग जाएगी।

शशि बहन की शादी भोपाल में हुई थी। साल भर मजे में गुजरा। उसके बाद परेशानियां शुरू हुईं। हालांकि वे आदिवासी समाज की थीं। वह भी पढ़ी-लिखी। आठवीं पास। आम तौर पर आदिवासी समाज में दहेज का रिवाज नहीं होता। पर शहर में आकर इन्हें भी यह रोग लग गई। ये भी दहेज मांगने लगे। शशि बहन वापस मायके चली आईं। अपनी बिटिया को लेकर। साथ में एक सपना लेकर। अपनी तकदीर तो आप न लिख सकीं, लेकिन अपनी बेटी को इस लायक जरूर बनाएंगी कि वह अपनी तकदीर आप लिख सके। आज यह सपना पूरे गांव की तकदीर बदलने लगा है।

उम्मीदें तो हैं

प्रेमलता बहन, तेजु बहन और शशि बहन को देख कर लगता है कि आज नहीं तो कल, पंचायत में औरतों की भागीदारी रंग जरूर लायेगी। हां, इसकी एक शर्त है। 'सेवा' जैसा कोई संगठन, कोई संस्था हाथ बंटाये। □

सबला-संघ की सक्रिय महिला पंचायतें

सुहास कुमार

दिल्ली की चार पुनर्वास बस्तियों में काम कर रही संस्था सबला-संघ का नाम 'सबला' के पाठकों के लिए नया नहीं है। यह उन्हीं बस्तियों की रहने वाली महिलाएं हैं। बस्तियां हैं—अंबेडकर नगर (द. दिल्ली), नंदनगरी और सीमापुरी (पूर्वी दिल्ली) और जहांगीर पुरी (पश्चिमी दिल्ली), सन् 1984 से शुरू हुआ इनका काम लगातार आगे बढ़ता ही गया है। एक ओर जहां लगातार बहनें जुड़ती रही हैं, दूसरी ओर काम का दायरा भी फैला है। 1993 से इन्होंने एक नया प्रयोग शुरू किया।

महिला पंचायत क्यों?

बस्ती की महिलाओं के साथ स्वास्थ्य, सफाई, अधिकारों के प्रति जागरूकता आदि काम के दौरान बस्ती की महिलाओं की अनेकों समस्याएं सामने आईं। कई बरसों की जान पहचान और विश्वास पैदा हो जाने से महिलाएं खुलकर बात करने लगीं। जब से काम शुरू हुआ आए दिन औरतों के साथ मारपीट, दहेज के कारण सताई गई लड़कियां, शराबखोरी तथा अन्य नशीली वस्तुओं का सेवन, जुए व लाटरी आदि से परेशान तमाम मामले आते रहते थे। कोर्ट-कचहरी करने का न तो इनके पास समय है, न आर्थिक साधन। अगर इनका किसी तरह जुगाड़ हो भी जाए तो उन फैसलों पर अमल हो रहा है या नहीं, कौन देखता है।

सोचा, अपने स्तर पर सबला-संघ क्या कर सकता है? और इसी सोच ने जन्म दिया

महिला-पंचायतों को। उनका कहना है—"हमने पुरुषों द्वारा चलाई पंचायतें बहुत देखी व सुनी हैं। उनमें औरतों को कभी इंसाफ नहीं मिला। वहां औरतों की बात ही नहीं सुनी जाती है। उनके नज़रिए को समझना तो बहुत दूर की बात है।"

कार्यकारी ढांचा

हर महिला पंचायत में 10 सदस्य बहनें (उसी बस्ती की महिलाएं) बैठती हैं। यह अपनी बस्ती के ही केसों को लेती हैं। यानी ज़रूरी है कि एक पक्ष उसी बस्ती का रहने वाला हो। पंचायत के गठन के पहले ही इन्होंने तय कर लिया था कि इनमें किसी पार्टी की लीडर या किसी नेता की पत्नी को शामिल नहीं किया जाएगा। इनमें कुछ बहनें सन् '84 से काम कर रही हैं, कुछ बहनें अभी हाल में जुड़ी हैं।

गतिविधियां

झगड़े-फिसाद के मामले कभी भी आ सकते हैं। इन्हें दर्ज करने के लिए हर दिन सबला-संघ के बस्ती-स्थित दफ्तर में दो बहनें सुबह लगभग 11 से 2 बजे तक बैठती हैं। केसों की सुनवाई के लिए तारीखें दी जाती हैं। इन्होंने इसके लिए बुधवार का दिन चुना है। प्रतिवादी (दूसरे पक्ष) को सूचित किया जाता है। अगर वह भी उसी बस्ती का/की रहने वाली है तो यह खुद बातचीत करने जाती हैं। अगर दूसरा पक्ष कहीं और का रहनेवाला है तो उसके नाम रजिस्ट्री चिट्ठी भेजी जाती है।

अगर पहले बुलावे पर दूसरे पक्ष का कोई जवाब नहीं मिलता है तो यह फिर से उसके घर जातीं या चिट्ठी भेजती हैं। दोनों पक्षों से बातचीत के बाद फैसले लिए जाते हैं। फैसलों की लिखापढ़ी होती है। दोनों पक्षों और गवाहों के हस्ताक्षर लिए जाते हैं। बात यहीं खत्म नहीं हो जाती। ये बाद में हर पंद्रह दिन, महीने पर उनके घर जाती हैं और देखती हैं कि फैसलों पर अमल हो रहा है या नहीं।

कानूनी मशवरे के लिए एक वकील भी है। पेचीदा मामलों जैसे बहू को जलाने या ज़मीन जायदाद के मामलों को अदालत ले जाने में भी यह लोग मदद करती हैं। परिवारों में कलह न हो, किसी को अन्यथा न सताया जाए, आपसी मेलजोल और समझौता इनका मुख्य उद्देश्य है। जंगपुरा, दिल्ली स्थित एक्शन-इंडिया (इनका सहयोगी व परामर्शदाता संगठन) में इनकी दो या तीन महीने में एक, दिन-भर की बैठक होती है। उसमें वकील भी शामिल होते हैं। सारी बस्तियों की महिलाएं पंचायतों में आए मामलों की चर्चा करती हैं। उन पर आपसी तथा कानूनी राय लेती हैं। कानून की जानकारी से मामलों को सुलझाने में बहुत मदद मिलती है। फैसलों को भी इससे मजबूती मिलती है। बहुत सी ज़्यादतियों को कानूनी डर दिखाकर और सामाजिक दबाव से रोका एवं कम किया जा सकता है। ऐसा तथ्य भी सामने आया।

पंचायतों में आए कुछ मामले

- **12 वर्ष की मीना को पड़ोस के चाचा ने बहला-फुसलाकर जंगल में ले जाकर बलात्कार करने की कोशिश की। मीना की मां हिम्मत करके सबला-संघ के पास शिकायत लेकर आई। इलाके के पुलिस वालों ने केस दर्ज करने से इंकार कर दिया। तब सबला-संघ की बहनों ने खुद थाने जाकर केस दर्ज करवाया। सबला-संघ की बहनें 200 बहनों को लेकर**

चौकी पहुंचीं और मुजरिम से सबके सामने जुर्म कबूल करवाया।

- दक्षिणपुरी की गीता का पति शराब पीकर रोज उसकी मार-पिटाई करता था और खर्चा नहीं देता था। उसका पति एक सरकारी मुलाजिम है। जब वह समझाने से नहीं माना तो सबला-संघ की बहनें उसके दफ्तर पहुंचीं और उसके अफ़सर से बातचीत की। अब गीता को घर का खर्चा समय पर मिलता है।
- शबनम की शादी एक टेलर-मास्टर के साथ हुई। दो बच्चे होने के बाद उसने शबनम को घर में रखने से इंकार कर दिया। सबला-संघ ने कानूनी मदद से एक साल के अंदर शबनम को गुज़ारा-भत्ता दिलवाया।
- जहांगीरपुरी में रामप्यारी का पति शराब पीकर मार-पिटाई करता था। काम कुछ करता नहीं था, ऊपर से लाटरी की लत। ऐसे आदमी से क्या उम्मीद की जा सकती है? वह रामप्यारी को क्या खर्चा-पानी देगा? लेकिन आज रामप्यारी को यह सहारा है कि वह अकेली नहीं है और उसकी मार-पिटाई पर भी रोकथाम है।

दहेज-हत्या के मामले भी आते हैं। मां-बाप लड़की की परेशानी जानते-समझते हुए भी उसे ससुराल जाने को मजबूर कर देते हैं। कुछ ही समय बाद यह खबर मिलती है कि लड़की जल मरी। विमला, राजबाला, कुसुम, गुड्डी आदि के केस इनके पास जल जाने के बाद आए। दहेज विरोधी कानून होते हुए भी क़ानूनी तंत्र मदद नहीं करता। लड़की को न्याय नहीं मिल पाता। अपराधी खुलेआम घूमते हैं।

- रेणुबाला को ससुराल वालों ने शादी के दो साल बाद घर से निकाल दिया। उसका दहेज़ वापस लेने में सबला-संघ ने विशेष महिला पुलिस इकाई की मदद ली।

> बहना कर महिला पंचायत मुकदमा खुद निबटाएंगे
> खुद निबटाएंगे, मुक़दमा खुद निबटाएंगे
> पुलिस थाने तुम मत जाना, पुलिस बड़ी बदमास
> इस पुलिस से बचने का बस एक यही है राज़
> कोर्ट कचहरी में जाने से पैसा होए बरबाद
> फिर भी मिले नहीं इंसाफ।
> मर्दों की पंचायत में बहना मिले न हमको न्याय
> मिले न हमको न्याय, उल्टा दोषी हमें बताएं
> महिला पंचायत में बहना सबकी सुनवाई होए
> सबकी सुनवाई होए, फैसला सोच समझकर होए
> बहिना कर महिला पंचायत मुक़दमा खुद निबटाएंगे।
>
> *सबला-संघ की बहिनों द्वारा रचा गीत*

- ममता का बच्चा उसके ससुराल वालों ने रखकर उसे घर से निकाल दिया। उसका पति कोई काम नहीं करता, स्मैक पीने वाला और चाकूबाज है। इन्होंने पुलिस की मदद से बच्चा वापस ममता को दिलवाया।
- कमला, उम्र 30 साल, दो बच्चे उम्र 10 व 6 साल; इलाका मदनगीर। कमला की शादी को 12 साल हो गए हैं। शादी के चार साल तक तो ठीक-ठाक चलता रहा। पति सरकारी मुलाजिम हैं। 50 गज़ का प्लाट खरीदा। पांच झुग्गियां थीं, एक में रहते थे। चार किराए पर दे रखीं थी। फिर पति ने शराब पीना शुरू किया। अब तीन साल से लाटरी खेलना शुरू कर दिया। प्लाट व पांचों झुग्गियां बिक गईं। पूरी तनख्वाह लाटरी में जाने लगी है। घर का सारा सामान, टी वी, रेडियो, साइकिल आदि बिक गया। कुछ कहने पर पति मार-पीट करता है। बच्चे भूखे मरने लगे तो कमला ने घरों में बर्तन-सफाई आदि का काम शुरू किया। शक्की होने की वजह से काम भी छुड़वा दिया यह कह कर कि वह खर्चा देगा। लेकिन फिर भी उसने लाटरी नहीं छोड़ी। कमला ने फिर काम ले लिया है। कमला

कुछ गलत हो गया तो?

वे कहते थे—
न बोला करो
कुछ गलत बोल गये तो!
लेने के देने पड़ेंगे...

वे कहते थे—
न चलो
कहीं गलत चल पड़े तो!
लेने के देने पड़ेंगे...

वे कहते थे—
सवाल-जवाब न करो
कहीं गलत जवाब दे बैठे तो!
लेने के देने पड़ेंगे...

एक दिन
मैंने कहा—
आज मैं खाना नहीं बनाती
नमक गलत पड़ गया तो!
हल्दी ज्यादा पड़ गयी तो!
चावल कच्चा रह गया तो!

मैंने कहा—
आज मैं कपड़े भी नहीं धोती
कपड़े मैले रह गये तो!
आज मैं घर साफ नहीं करती
मैल जमा रह गई तो!
आज मैं चूल्हा नहीं जलाती
कहीं आग गलत लग गई तो!
लेने के देने पड़ेंगे...
है न!

—मणिमाला

कुछ गलत हो गया तो?

वे कहते थे—
न बोला करो
कुछ गलत बोल गये तो!
लेने के देने पड़ेंगे...

वे कहते थे—
न चलो
कहीं गलत चल पड़े तो!
लेने के देने पड़ेंगे...

वे कहते थे—
सवाल-जवाब न करो
कहीं गलत जवाब दे बैठे तो!
लेने के देने पड़ेंगे...

एक दिन
मैंने कहा—
आज मैं खाना नहीं बनाती
नमक गलत पड़ गया तो!
हल्दी ज्यादा पड़ गयी तो!
चावल कच्चा रह गया तो!

मैंने कहा—
आज मैं कपड़े भी नहीं धोती
कपड़े मैले रह गये तो!
आज मैं घर साफ नहीं करती
मैल जमा रह गई तो!
आज मैं चूल्हा नहीं जलाती
कहीं आग गलत लग गई तो!
लेने के देने पड़ेंगे...
है न!

—मणिमाला

दूध का कर्ज़

वीणा शिवपुरी

प्यारे बेटे मानव,

खुश रहो।

मैं तुझे लम्बी उम्र का आशीर्वाद नहीं दूंगी। उम्र जितनी भी हो, अच्छे कामों में लगे। ताकि मन को शांति, सुख और खुशी मिले।

आज मेरे लिए बड़ी खुशी का दिन है। मेरा बेटा जवान हो कर ब्याहने गया है। कल तू अपनी दुल्हन लेकर वापिस आएगा। आज यहां खूब गाना-बजाना हो रहा है। गांव की तेरी बहनें दूल्हा-दुल्हन बन कर नाटक कर रही हैं।

अभी-अभी दूल्हा बनी कमली सिर पर साफ़ा बांधे लाठी लेकर घर में घुसी। दुल्हन बनी किसनी ने खाने की थाली परोसी। खाना ठंडा था। दूल्हे ने थाली को ठोकर मार दी। और डंडा लेकर दुल्हन को मारने लगा। दुल्हन घुटनों में मुंह छिपा कर रोने लगी। गांव की सारी औरतें खूब हंस रही हैं।

शादी-ब्याह में ऐसे नाटक घर-घर होते हैं। औरतें इसमें कुछ भी बुरा नहीं देखतीं। उनकी अपनी जिंदगी में भी यही रोज़ होता है। कभी पति मारता है। कभी सास खाने को नहीं देती। कभी ससुर डांटता है। मेरे अपने जीवन में भी यही सब कुछ होता था। तू तो मेरी जिंदगी के पच्चीस

सालों का गवाह है। चाहे छोटा भले ही हो, हर जुल्म तेरी आंखों के सामने हुआ। तू डरा हुआ कोठरी के कोने में दुबक जाता था। जब तेरे बापू बात-बेबात पर डंडा उठा लेते थे। कितनी बार गायों के औसारे में तूने मुझे दादी से छुपा कर रोटी खिलाई थी। कितनी बार मेरी गोदी में छुप कर मेरे साथ रोया है।

तेरी दादी को घमंड था कि उनका बेटा तो 'सरवन कुमार' है। उनके कहने पर वो अपनी दुल्हन की जान भी ले सकता है। बेटा मानव, मुझे नहीं चाहिए श्रवण कुमार। हम सब इंसान हैं, जिसमें कुछ गुण हैं, कुछ दोष। मैं तो चाहती हूं कि तू इंसान ही रहे और अपनी दुल्हन को भी इंसान समझे। बस, न तो उसे देवी बना कर पूज, न उसे पैरों की धूल समझ। पत्नी तो जीवन की बराबर की साथी है। जब तू कमज़ोर पड़े तो वह संभाल ले। जब उसे ज़रूरत हो तब तू उसका सहारा बने।

तेरी दादी को मैं दोष नहीं देती। उनका सोचना था कि बेटा अगर दुल्हन का मीत हो गया तो उनका मान नहीं रहेगा। औरतों का मान किसी की पत्नी, किसी की मां बन कर मिलता आया है। इसीलिए वो उस पति और बेटे को मुट्ठी में बांध कर रखना चाहती हैं। चाहे लाड़ मनुहार या आंसुओं से या अपने दूध की कीमत मांग कर।

यह बात मुझे भी तब समझ में आई जब तेरे पिता के गुजरने पर मैं अपने पैरों पर खड़ी हुई। तुझे तो मालूम ही है कि मैंने क्या-क्या दुख सहे। कितनी मुश्किल से पढ़ा-लिखा, अध्यापिका बनी। फिर मैंने देखा, मेरा अपना मान होने लगा। लोग मुझे इज्ज़त देते थे। मेरी सलाह मांगते थे।

आज मैं किसी की बेटी या पत्नी के नाम से नहीं जानी जाती। आज मैं करमां बहन जी हूं। मैं यह नहीं कहती कि किसी मर्द के नाम से पुकारे जाने में कोई अपमान है। कोई मुझे मानव की मां कहे तो अच्छा लगता है। वैसे ही जब तुझे करमा बहन जी का बेटा कहें तो तुझे भी गर्व होना चाहिए। तभी रिश्ते बराबरी के कहला सकते हैं।

मैंने बचपन से तुझे गरीब-अमीर, शिक्षित-अशिक्षित, औरत-मर्द को बराबर मान देना सिखाया है। मुझे उम्मीद है, मेरी शिक्षा बेकार नहीं जाएगी।

कल जब तू दुल्हन को लेकर दरवाजे पर आएगा, मैं तुम दोनों की आरती उतारूंगी। तुम्हें खुश रहने का आशीर्वाद दूंगी। तू मुझसे दूध की कीमत पूछेगा। न मैं सोने के कंगन मांगूंगी, न दुल्हन के गले का हार। बेटा, मैं तो तुझे अपना कर्ज़दार मानती नहीं। अगर अपनी मां को कुछ देना ही चाहता है तो एक वचन दे। तेरी दुल्हन के साथ वो सब न हो जो तेरी मां के साथ हुआ। अत्याचार की यह जंज़ीर कभी तो टूटनी चाहिए। एक भरपूर सुखी पत्नी और मां ही ममताभरी सास बनेगी। एक इंसान के रूप में एक दूसरे की बढ़ोतरी में सहयोगी बनो। यही मेरी इच्छा है और यही मेरा आशीर्वाद। बहुत से प्यार के साथ

तेरी मां

कर्मवती

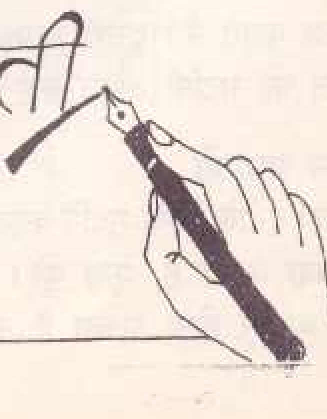

इंसान बनने से परहेज़ क्यों?

"बच्चे पाले, मर्द बनाए
और बनाई औरत
नहीं बनाया हमनें उनको
एक अदद इंसान"

हम सभी कहते और सुनते आए हैं कि बच्चे तो गीली मिट्टी के समान हैं। उन्हें चाहे जैसा ढ़ाल लो। यह काफ़ी हद तक सही है। खासतौर पर जब मज़बूत मर्द बच्चे गढ़े जाते हैं। अथवा कमज़ोर औरत ज़ात बनाई जाती है। कहने का मतलब यह है कि लड़के और लड़कियों को बचपन से ही एक खास तरह का मर्द या औरत बनने की शिक्षा दी जाती है। लड़के को पुरुषत्व के गुण सिखाए जाते हैं। जैसे बहादुरी, हिम्मत, आक्रामकता, हिंसा। लड़की को स्त्रीत्व के गुण सिखाए जाते हैं। जैसे नम्रता, सेवा, त्याग, हिंसा से डर। पुरुषत्व के गुण क्या हैं और स्त्रीत्व के गुण क्या हैं, इसका फ़ैसला समाज करता है। इसी कारण हमारे दिमाग में भी मर्द तथा औरत शब्द के साथ कुछ ख़ास गुणों की तस्वीर बन जाती है। जब कोई मर्द या औरत उससे हट कर व्यवहार करता है तो समाज उसे बर्दाश्त नहीं करता। नम्र, भावुक, सेवा भाव वाले मर्द को औरतनुमा या ज़नखा कहते हैं। दूसरी तरफ बहादुर, हिम्मती औरत को मर्दानी औरत कह कर हंसते हैं।

इंसान बनाओ

हम देखते हैं कि मर्दानि कहलाने वाले गुणों में भी कुछ अच्छे हैं, कुछ बुरे। एक तरफ हिम्मती और बहादुर होना अच्छा है, तो आक्रामक या हिंसक होना बुरा। वैसे ही औरतों के गुणों में कुछ अच्छे हैं, तो कुछ बुरे। हम जब बच्चों को पालते हैं तो एक लीक पर चलते हैं। यानि लड़के से कुछ कहते हैं और लड़की से कुछ और यदि दोनों के अच्छे गुणों को लेकर बच्चों को अच्छा इंसान बनाएं तो समाज से कई बुराइयां दूर हो सकती हैं।

बच्चों को पालने और उन्हें ढालने का काम सिर्फ़ मां-बाप नहीं करते। परिवार, आस-पड़ौस, समाज, रीति-रिवाज, सभी उसमें भूमिका निभाते हैं। बीस या पच्चीस साल की शिक्षा के बाद नतीजा होता है एक अंहकारी मर्द और एक दबी हुई औरत।

बदलाव की प्रक्रिया

अगर समाज में बदलाव लाना है तो मर्द और औरत के इन सांचों को बदलना पड़ेगा। आज के ज़माने में ये पुराने सांचे काम नहीं आ सकते। अब स्त्री-पुरुष के आपसी संबंध बदल रहे हैं। औरतों व मर्दों की भूमिकाएं व कामकाज के दायरे बदल रहे हैं। तो पुरुषत्व और स्त्रीत्व की परिभाषा को भी बदलना पड़ेगा। आज टकराव का एक बड़ा कारण यही है।

औरतें मर्दों की भूमिका निभा रही हैं। उनके बहुत से काम अपने कंधों पर उठा रही हैं। फिर

> **स्त्री हो या पुरुष, इंसानी गुणों का विकास करने में ही इस समाज और देश का भला है। इससे न सिर्फ़ परिवारों से हिंसा कम होगी बल्कि समाज में भी शांति और भाईचारा आएगा।**

एक अहम सवाल ?

भी उनसे "कमजोर औरत" का नाटक करने की आशा की जाती है। ये दोहरे मापदंड अब औरत को मंजूर नहीं हैं। आज एक हिम्मती और आत्म-विश्वास से भरी औरत कोई अजूबा नहीं है। वह सच्चाई बनती जा रही है। मर्द को न सिर्फ़ उसे स्वीकार करना चाहिए, बल्कि उसका सहयोगी बनना चाहिए।

समय की मांग के अनुसार मर्दों को भी प्यार, नम्रता, सेवा के गुण अपनाने होंगे। अब पिता का मतलब एक खूंखार जल्लाद नहीं है, जिसे देखते

समाज में बदलाव लाना है तो मर्द और औरत के परंपरागत सांचों को बदलना पड़ेगा। आज के ज़माने में ये पुराने सांचे काम नहीं आ सकते।

ही बच्चे कोनों में जा छुपें। पिता वह है जो बच्चों के पोतड़े बदलता है। उंगली पकड़ कर चलना सिखाता है। बच्चों के बीमार पड़ने पर सारी रात जागता है। जो परिवार के साथ हंसता है, खेलता है और रोता भी है। क्या यही सब इंसान के गुण नहीं हैं?

स्त्री हो या पुरुष, इंसानी गुणों का विकास करने में ही इस समाज और देश का भला है। इससे न सिर्फ़ परिवारों में हिंसा कम होगी बल्कि समाज में भी शांति और भाईचारा आएगा। साम्प्रदायिक नफ़रत कम होगी। धार्मिक भेदभाव खत्म होंगे। हम एक दूसरे के साथ प्रेम से रहना सीखेंगे। चाहे वह पति-पत्नी हों या पड़ोसी। मुहल्ले वाले हों या विदेशी। आखिर हैं तो सभी इंसान, फिर इंसान बनने से परहेज़ क्यों! □

"बच्चे पाले, मर्द बनाए
और बनाई औरत
नहीं बनाया हमने उनको
एक अदद इंसान"

नया साल नई शक्ति देगा

यह साल
हमें जोड़ेगा
हमें सिखायेगा
कि, खुशियां
सुखों की मोहताज़ नहीं होतीं
हम तब तक बेचारी हैं
जब तक हमारी जुबान
में आवाज़ नहीं होती
यह साल
हमें बोलना सिखायेगा
यह साल
हमारी सोच को
नई दिशाएं देगा
हमारे संकल्प को
नई शक्ति देगा
हमारे संघर्ष को
नया विश्वास देगा
यह साल
हमें सच बोलने की
सच सुनने की
सच के लिए अड़ने की
ताकत देगा
यह साल हमें
जीवन के लिए मरना
और
दोस्तों के लिए
जीना सिखायेगा
यह साल
हमें दोस्त बनाना सिखायेगा
दोस्ती निभाना सिखायेगा

इस साल
कहीं दंगें नहीं होंगे
कोई बच्चा यतीम नहीं होगा
किसी मां की
गोद नहीं उजड़ेगी
कहीं, किसी भगदड़ में
निर्दोष जन
नहीं मारे जायेंगे

इस साल
हम टूटे हुए को जोड़ेंगे
यह साल हमारा होगा
इस साल
हम सपनों में रंग भरेंगे
इस साल
हम सपनों की पहरेदारी करेंगे।

-मणिमाला

इस साल
कहीं कोई कत्ल नहीं होगा
इस साल
हम नफ़रत की आंधी रोकेंगे

लड़की, तुम स्कूल क्यों नहीं जाती?

लड़की, तुम स्कूल क्यों नहीं जातीं?
छोड़ दो मिट्टी में खेलने
की आदत
बंद करो यह
गुड्डे-गुड्डियों का खेल
आखिर कब तक
तुम करती रहोगी चौका चूल्हा
और लीपती पोतती रहोगी
घर आंगन को!

जिस मां ने तुम्हें सिखाया था
चूल्हे की आंच में
आटा गूंधना, रोटियां पकाना
जो जलती रही ईंधन की
लकड़ियों की तरह सारी उम्र
वह मां तुम्हें
स्कूल क्यों नहीं भेजती?

क्या तुम्हारे हिस्से
धुंए से भरी रसोई
अलसाई दुपहरें
विषाद भरी रातों का गहरा सन्नाटा
लम्बा घूंघट
चूड़ियों की खनक
छोटे-छोटे सुखों में
हर्षित भावनाओं का आवेग
नवजात शिशु के
गंधाये दूध की गंध
के सिवाय
और कुछ भी नहीं है?

यह सारी धरती
सारा गगन
यह सारी विपल सम्पदाएं
तुम्हारे लिए हैं
इतना भर जान लो बस,
समूचे लोग कभी साथ नहीं होते
तुम समुच्य को कितना
समेट सकती हो
यह बात मायने रखती है!

—विक्रम जनबन्धु

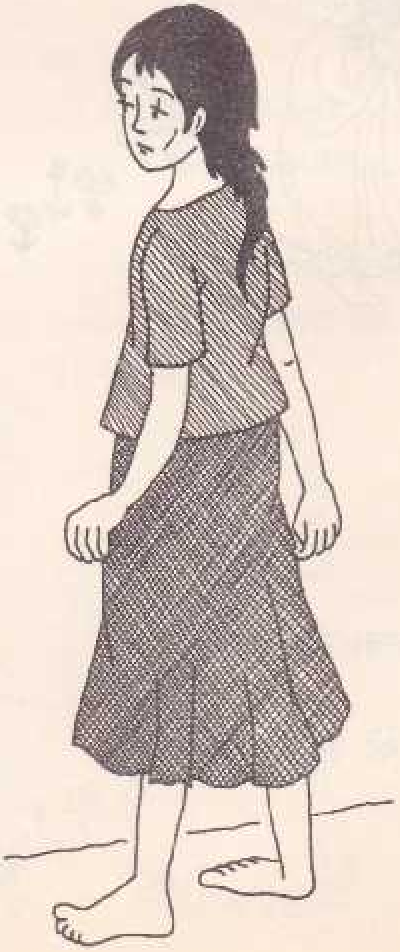

मैं इंसान हूं, इज़्ज़त से जीना चाहती हूं

जुही

साधारण मध्यम वर्गीय परिवार में पैदा हुई थी आसो। सात भाइयों की अकेली बहन। पर फिर भी बेटी की जात थी। बोझ कहलाती, ताने सुनती बड़ी होने लगी। विधवा मां ने जोर देकर पांच क्लास तक पढ़ा दिया। फिर भाई न माने। गाय की तरह ननकू के खूंटे बांध दिया।

शादी के पहले दिन से ही ननकू ने रंग दिखाना शुरू कर दिया। अपने घर ले जाने के बजाय अपने कुछ दोस्तों के पास ले गया। आसो को उनमें से एक के साथ घर जाने को कहकर खुद शराब पीने बैठ गया।

शादी का पहला दिन। नौ साल की बच्ची क्या कहती। चुपचाप चल पड़ी। अभी कुछ दूर ही पहुंची थी कि उस आदमी ने उसके साथ छेड़छाड़ करनी शुरू कर दी। आसो घबरा गई। जोर-जोर से रोने लगी। चीख-पुकार से डरकर वह आदमी भाग गया।

बात आई-गई हो गई। आसो का पति उसे घर ले गया। पर वह था तो आखिर कसाई। उसने शादी तो बस नाम के लिए की थी। उसे तो एक नौकरानी चाहिए थी।

दिन गुजरते रहे, आसो जवान हुई। पर ननकू के लिए उसके दिल में जगह कभी नहीं बनी। बनती भी कैसे। वह तो नाम का पति था। नकारा, जिद्दी, बात-बात पर गाली-गलौज करने वाला। न कमाता, न सहारा देता। बस, आसो की कमाई पर खाता। उसके गहने बेच कर शराब पीता, दावतें उड़ाता।

भला कोई ऐसे पति के साथ कैसे निभा सकता है। आसो का जी उकता गया था। रोज की मार अब सहना उसके बस में नहीं था। पर वह क्या करती। किसे दुख सुनाती। मां का तो अपना ही ठिकाना नहीं था, उससे क्या सहारे की आस लगाती।

सात साल गुजर गये। आसो के दो बच्चे भी हो गये।

हिम्मत बढ़ी

उम्र बढ़ने के साथ-साथ आसो की समझ और हिम्मत दोनों बढ़ीं। उसने ऐसी शादी मानने से इनकार कर दिया। कहने लगी, पहले जो कदम उठाना था, आज वो उठा पाई हूं। यह शादी तो गुड्डे-गुड़िया का खेल था। मेरी पसंद की नहीं थी। मैं इसे नहीं मानूंगी।

पर आसो को यह नहीं मालूम था कि पूरा समाज उसके खिलाफ हो जाएगा। गांव वाले उसे

बेहया, आवारा कहेंगे। उसे यह संघर्ष अकेले लड़ना होगा। उसने सोचा था, सब उसका साथ देंगे। ननकू सुधर जाएगा जब गांव पंचायत का दबाव पड़ेगा।

पंचायत का फैसला

ननकू ने पंचायत बैठाई। अपनी औरत की बेरुखी और गांव की इज्ज़त पर चोट की। अपनी लाचारी की दुहाई दी। आसो ने भी पंचों को अपनी कहानी सुनाई। जरा तो सोचो-समझो। मुझे मुक्ति दिला दो। पर पंच कौन थे। ननकू जैसे मर्द। अगर वह आसो की बात मान लेते तो कल सारी औरतें बागी हो जाएंगी। उनकी तानाशाही कैसे चलेगी?

पंचों ने निर्णय सुनाया। चाहे जो भी हो, आसो को ननकू के साथ ही रहना पड़ेगा। पति परमेश्वर होता है। उसके घर से औरत की अर्थी जाती है। आसो बहुत चीखी-चिल्लाई पर किसी ने उसकी एक न सुनी।

ननकू उसे घसीटता हुआ चौपाल से घर तक ले गया। घर ले जाकर खूब मार-पीट कर उसे बंद कर दिया। पर आसो को किसी भी हाल यहां रहकर यह अन्याय सहना मंजूर नहीं था। उसने तय कर लिया, वह इस नर्क में नहीं रहेगी। हार नहीं मानेगी।

कुछ साल और गुजरे। आसो ने इस बीच एक और नयी तरकीब निकाली। मन में ठान ली मैं पढूंगी। लोगों ने दांत तले अंगुली दबा ली। पंचायत बैठी। उसने शर्त रखी। या तो ननकू के साथ नहीं रहूंगी या पढ़ने जाऊंगी। लाख समझाया, आसो डटी रही। गांव के केंद्र में वह पढ़ने लगी। मास्टरनी की मदद से दसवीं पास की। बारहवीं का फार्म भरा। ननकू उसे अब भी मारता-गाली देता। पर जैसे-जैसे उस पर जुल्म-दबाव बढ़ता, उसके इरादे पुख़्ता होते जाते।

कुछ और समय बीता। आसो ने अब तक बी.ए. पास कर लिया था। ननकू अब उसे ज्यादा कुछ नहीं कहता था। शराब ने उसे खोखला कर दिया था। वह सोचता, यह तो ढीठ हो गई है। मैं क्या करूं। आसो को घर से वह निकाल नहीं सकता था। काम कौन करता, कमाता कौन। मन ही मन उसे यह भी लगता था कि अगर आसो न होती तो उसका घर बिखर गया होता। पर था पुरुष ही। अहं जुबान का पहरेदार। कह देता तो मर्द कैसे कहलाता।

आसो का संकल्प

समय ने पलटा खाया। एक रात शराब पीकर ननकू सड़क पर चल रहा था। एक ट्रक से टकरा गया। टांग की हड्डी टूट गई। कुछ लोग उसे अस्पताल ले गये। आसो ने उसका इलाज करवाया। खूब देखभाल की। ननकू ठीक हो गया। उसे शर्मिंदगी भी थी। उसने आसो से माफी मांगी।

पर आसो टस से मस नहीं हुई। बोली, तुम्हारा इलाज कराना मेरा फर्ज़ था। पर तुम्हारे साथ मैं हरगिज़ नहीं रह सकती। पंचायत ने इस दफ़ा उसे प्यार और ममता का वास्ता दिया। उसे औरत का धर्म समझाया।

पर आसो अपनी मांग पर डटी रही। उसने दोहराया, मैं ननकू के साथ नहीं रहूंगी। पंद्रह साल तक दुख सहती रही। अब घुट-घुट कर नहीं जीऊंगी। समाज ने उसे बच्चों का वास्ता दिया। कहा, ननकू बेटे रख लेगा।

"न दे। मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं अपना कमा कर खा लूंगी। मुझे पति, बच्चे नहीं चाहिए। अपना सुख, चैन, इज्ज़त चाहिए।" आसो की इच्छा के आगे समाज को घुटने टेकने पड़े। पंच जान गए थे, उसे अब रोकना संभव नहीं। उन्होंने आसो को आजाद कर दिया।

आज नौ साल की आसो अट्ठाइस साल की है। मैं दस साल बाद उस से मिली थी। आज वह एक सरकारी स्कूल में नौकरी करती है। खुश और संतुष्ट है। एक सवाल जो मेरे मन में दबा पड़ा था, आज मैंने पूछ ही लिया। आसो, ननकू ने तो अपनी गलती मान ली थी, फिर तू उसके साथ क्यों नहीं रही। तेरे बच्चे तेरी आंखों के सामने रहते।

"दीदी, मेरा मन खट्टा हो चुका था। पहले मैं अपने पति से डरती-दबती थी। फिर वह मुझसे दबने लगा। जीवन की गाड़ी तो बराबरी के पहिए हों तभी सरपट चलती है। नहीं तो हिचकोले लगते रहते हैं। अपना स्वाभिमान खोकर मैं रहना नहीं चाहती थी। अगर उस पल मैं रुक जाती तो कोई भी औरत अपने पति के अत्याचार का विरोध कर अपनी जिंदगी नए सिरे से शुरू नहीं कर पाती। मर्द माफी मांगता रहता, औरत देवी बनी रहती। इंसान नहीं बन पाती। ऐसे चुपचाप, बिना पूंछ-सींग हिलाए हम भी जीने लगें तो जानवर जीते हैं। इंसान नहीं। और इस समाज को औरत को इंसान बनकर सुख, चैन और इज्ज़त से जीने का हक़ देना ही होगा।"

आसो तो चली गई। पर मैं हतप्रभ रह गई। □

दोषी कौन

अनिता ठेनुआ

मुझे यहां का माहौल कत्तई पसन्द नहीं है, सब काम मजबूरी में करती हूं। हम तो रखैल जैसी हैं। सरकार को हमारे लिए कुछ करना चाहिए। मैं उस रास्ते पर नहीं चलूंगी जहां कांटे ही कांटे हों।

पैसा तो कमाना चाहती हूं पर इस काम के ज़रीए नहीं। कोई दूसरा काम करना चाहती हूं। लेकिन समाज हमें स्वीकार नहीं करता, उसी पुराने रूप से देखता है, तो फिर हमारे पास क्या रास्ता रह जाता है?

मैं शादी करके घर बसाना चाहती हूं, परन्तु मां-बाप कहते हैं, अपने रस्मों रिवाज़ पूरे करो।

ये सवाल हैं आपके और मेरे जैसी कुछ लड़कियों के। हमारे समाज ने हमेशा हमारे पैरों में बेड़िया डालीं हैं, कुछ इज्ज़त-परिवार के नाम से, कुछ प्यार-दुलार के नाम से, तो कुछ रसो-रिवाज के नाम से।

राजस्थान में एक गांव है लुधावई। यहां बेडिया जाति के लोग रहते हैं। यहां पर लड़कियों के जन्म पर दुःख नहीं, खुशियां मनाई जाती हैं। लड़के-लड़की दोनों के पालन-पोषण में किसी भी तरह का भेदभाव नहीं बरता जाता। मां की देखरेख लड़के या लड़की, कुछ भी जनने पर एक समान होती है। अन्य जातियों/इलाकों में सिर्फ़ लड़के की नाल जमीन में गाढ़ी जाती है। पर यहां दोनों की नाल पैदा होते ही गाढ़ने का चलन है।

लड़की को ज्यादा महत्व—प्यार या स्वार्थ

आप सोच रहे होंगे, बड़ी अच्छी बात है कि लड़की को लड़के से ज्यादा महत्व दिया जाता है। आखिर यही तो हम चाहते हैं। पर क्या आप जानते हैं ऐसा क्यों है। यहां के रिवाजानुसार घर को चलाने की जिम्मेदारी लड़की की होती है। पढ़-लिखकर नौकरी करके नहीं बल्कि एक रिवाज को आगे बढ़ाने के लिए।

ग्यारह वर्ष की हो जाने पर लड़की से पूछा जाता है कि वह क्या चाहती है, शादी करना या धंधा करना। घरवालों की परेशानी और दबाव को देखते हुए अकसर लड़कियां धंधा करना मंजूर कर लेती हैं।

इसके बाद लड़कियों को शिक्षा दी जाती है। शिक्षा मां-बाप अपने पैसे पर दिलाते हैं। इसके तहत नृत्य, संगीत, गज़ल गाना, शेर-शायरी, हाव-भाव से रिझाना आदि शामिल होते हैं।

इस व्यवस्था को बदलने का सबसे पहला कदम है हमें अपने आप को बदलना होगा। अगर अन्याय करना गुनाह है तो अन्याय सहना भी अपराध है। जब हम बदलेंगे तो यह समाज बदलेगा और जमाना बदलेगा।

गुजरात, अहमदाबाद, दिल्ली, बरेली जैसे बड़े शहरों में यह तालीम दी जाती है। पर बंबई इस तालीम का गढ़ है।

नाच-गाने के प्रशिक्षण के बाद नथ पहनने की पहली रस्म होती है। नथ पहनाने वाला व्यक्ति कोई जेठ या पैसे वाला होटल का मालिक होता है। नथ की रस्म के समय वह व्यक्ति गहने, कपड़े और रुपये भी लाता है। साथ ही वह पैर के बिछुए अपने हाथों से लड़की को पहनाता है। यह गहने-जेवर लड़की के होते हैं। इस रस्म के बाद लड़की उस खरीददार की हो जाती है। पहली रात वह लड़की अपने मालिक के साथ गुजारती है। फिर मालिक चाहे उसे अपनी रखैल बनाकर रखे या फिर ठेकेदार की तरह उससे धंधा कराए। इसके साथ लड़कियों को होटल में नाचना, गाना, ग्राहकों को रिझाना भी पड़ता है।

लड़कियों को पैसा रोज़ मिलता है। इससे उनके घर का खर्चा चलता है। यह पैसा थोड़ा होता है। हां, अगर कोई ग्राहक खुश होकर लड़की को कोई कीमती तोहफा या जेवर देता है तो वह तोहफा भी मालिक ले लेता है। यानि पूरी मेहनत लड़की की होती है पर कमाई पर अधिकार उसका नहीं होता। इस तरह का सिलसिला तब तक चलता है जब तक लड़की पैंतीस साल की नहीं हो जाती।

पैंतीस साल की हो जाने के बाद लड़की धंधा

ठान ले अगर लड़की

नम्रता को असहायता न कहो
गोया कि मुंहजोर नहीं होती लड़की
ठान ले अगर कुछ करने का
कर दिखाएगी, कमजोर नहीं होती लड़की

मौका मिले उसे तो वह
संभाल सकती है बागडोर
पुरुषों को भी पीछे खींच लायेगी
थामे वह अपनी मजबूत डोर
अपनी पहचान आप बनायेगी
शहजोर नहीं होती लड़की

संस्कारों में पलकर लड़की
सदा लाजवंती रहती है
ईंट पत्थर की चारदीवारी को
घर बनाया करती है
पुरुष अत्याचार करे फिर भी
प्रतिकार नहीं करती लड़की

यह न भूलो मानव तुमने
उसी की कोख से जन्म लिया
फिर नारी को क्यों पद पद पर
निर्वासित और अपमानित किया
इंसाफ के लिये लड़ेगी
अन्याय अब नहीं सहेगी लड़की।

नीर शबनम

ठान ले अगर लड़की

नम्रता को असहायता न कहो
गोया कि मुंहजोर नहीं होती लड़की
ठान ले अगर कुछ करने का
कर दिखाएगी, कमजोर नहीं होती लड़की

मौका मिले उसे तो वह
संभाल सकती है बागडोर
पुरुषों को भी पीछे खींच लायेगी
थामे वह अपनी मजबूत डोर
अपनी पहचान आप बनायेगी
शहजोर नहीं होती लड़की

संस्कारों में पलकर लड़की
सदा लाजवंती रहती है
ईंट पत्थर की चारदीवारी को
घर बनाया करती है
पुरुष अत्याचार करे फिर भी
प्रतिकार नहीं करती लड़की

यह न भूलो मानव तुमने
उसी की कोख से जन्म लिया
फिर नारी को क्यों पद पद पर
निर्वासित और अपमानित किया
इंसाफ के लिये लड़ेगी
अन्याय अब नहीं सहेगी लड़की।

नीर शबनम

हारोहाली ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट ग्रामीण औरतों के आर्थिक विकास में सफल

आदर्श सभलोक

गांवों में औरतों की दशा सुधारने के लिए यह बहुत ज़रूरी है कि उन्हें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाया जाए। इसके लिए यह आवश्यक है कि उन्हें गांव में ही ऐसे काम दिलवाए जाएं जिनसे उन्हें सारा साल आमदनी होती रहे। खेतीबाड़ी के अलावा उन्हें दूसरे कामों में ट्रेनिंग दी जाए ताकि अपने खाली समय में वे दूसरे काम करके पैसा कमा सकें।

बंगलौर के निकट हारोहाली में स्थित ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट एक ऐसा ही ग्रामीण प्रोजेक्ट है। यह इंस्टीट्यूट अगस्त 1990 में शुरू किया गया था। इसके तहत पांच सालों में 3000 औरतों को ट्रेनिंग देने का मकसद है। इस प्रोजेक्ट का खर्चा भारत सरकार उठा रही है।

ट्रेनिंग के विभिन्न आयाम

जून 1991 में दो साल से भी कम समय में कुल 905 लड़कियों व औरतों को ट्रेनिंग दी जा चुकी है। इन में से 318 लड़कियों व औरतों को विशेष प्रकार के हुनर सिखाए गए। 399 औरतों को 15 समूहों में बांट कर खेतीबाड़ी, पशुपालन, सब्जियों व फलों के उत्पादन को बढ़ाने के नए तरीके सिखाए गए। 188 औरतों को नौ समूहों में ज्ञान बढ़ाने के लिए भिन्न विषयों में ट्रेनिंग दी गई।

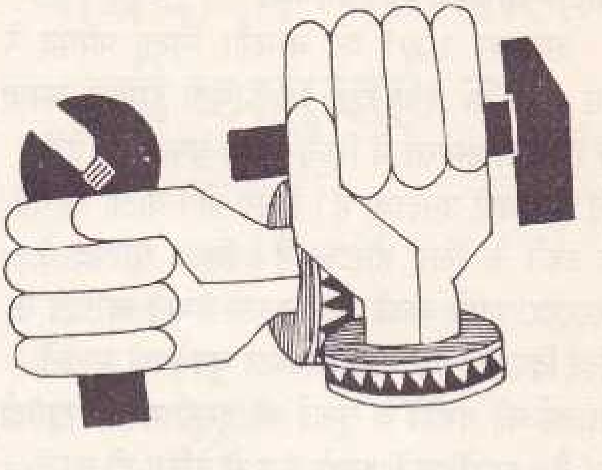

उन्हें स्वास्थ्य के संबंध में विस्तृत जानकारी दी गई। बैंकों के बारे में जानकारी दी गई व बचत करने के तरीकों के बारे में बताया गया। इसके साथ ही उन्हें प्रौढ़ शिक्षा दी गई व लाइब्रेरी चलाने के बारे में ज्ञान दिया गया। साथ ही साथ उन्हें बच्चों के पालन पोषण के सही तरीकों व स्वच्छता के बारे में जानकारी दी गई।

अगरबत्तियों का प्रशिक्षण

औरतों को अगरबत्तियां बनाने का काम भी सिखाया गया। अब यह काम कई छोटे-छोटे केंद्रों में किया जा रहा है। तमासन्दरा गांव के केंद्र में बहुत अच्छा काम हो रहा है। इस गांव में वर्षा कम होने के कारण खेतों पर मज़दूरी का काम सिर्फ चार-पांच महीने के लिए मिलता था। अब अगरबत्तियां बनाने के काम से औरतों को साल भर काम मिलता रहता है जिससे उनकी आर्थिक स्थिति पहले से अच्छी हो गई है। गांव की औरतें अब अपने खाली समय में अगरबत्तियां बनाती हैं। इस काम से वह प्रतिदिन 20 रुपये तक कमा लेती हैं।

ज़िला परिषद का सहयोग

अक्तूबर 1991 को बंगलौर ज़िला परिषद ने इस काम के लिए एक बहुत बड़ी इमारत बनवा दी है। इस इमारत में भिन्न-भिन्न प्रकार की ट्रेनिंग की सुविधाएं उपलब्ध हैं। ट्रेनिंग लेने वाली औरतों के रहने के लिए होस्टल हैं। ज़िला परिषद ने 90,000 रुपये बाकी ज़रूरत का समान खरीदने के लिए दिए हैं। इस धन से स्वैटर बुनने की मशीनें, सिलाई की मशीनें व बुनाई की दूसरी मशीनें खरीदी गई हैं। इसमें इतने अच्छे ढंग से ट्रेनिंग दी जाती है कि ज्यादा से ज्यादा औरतें यहां ट्रेनिंग के लिए आने लगी हैं।

औरतों को 25-30 के समूह में बांटा जाता है और इन्हें ट्रेनिंग के दौरान 6 से 12 हफ्ते तक के लिए रहने का स्थान दिया जाता है। औसतन 90-100 औरतें व लड़कियां हर रोज़ यहां ट्रेनिंग लेने के लिए आती हैं। इन सभी को यहां मुफ्त खाना दिया जाता है। ट्रेनिंग लेने के लिए कोई फ़ीस नहीं देनी होती बल्कि ट्रेनिंग के लिए इस्तेमाल होने वाला सारा सामान भी उन्हें मुफ्त दिया जाता है।

ट्रेनिंग देने वाली सभी औरतें हैं। यह गांव की औरतों को मशीनों पर स्वैटर बनाना, रैडीमेड कपड़े तैयार करना और बैग व पर्स बनाना सिखाती हैं। इसके साथ ही साथ औरतों को लिज्जत पापड़ बनाने भी सिखाए जाते हैं। केंद्र में काम सीखने के समय की कोई पाबंदी नहीं है। औरतें अपने घर का काम खत्म कर केंद्र पर आ जाती हैं व काम सीखती हैं। कभी कभी इंस्टीट्यूट में ट्रेनिंग देने के लिए बाहर से विशेषज्ञों को बुलाया जाता है जो स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, प्रौढ़ शिक्षा व बागवानी के बारे में ज्ञान देते हैं।

आत्मनिर्भरता का उद्देश्य

इन सब कामों को सिखाने का एक ही मकसद है कि गांव की औरतें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन सकें। वे स्वयं ही अपने लिए गांवों में काम जुटा सकें व पैसा कमा सकें। इसीलिए गांव की औरतों को गाय-भैंस की सही देखभाल व दूध का उत्पादन ज्यादा बढ़ाने के बारे में भी जानकारी दी जाती है।

अच्छी ट्रेनिंग व्यवस्था से बंगलौर के आसपास के गांवों की हालत पहले से बहुत सुधर गई है। बहुत सारी औरतों ने ट्रेनिंग लेने के बाद अपने छोटे-छोटे व्यवसाय शुरू कर दिए हैं। बाकी औरतें केंद्र में जाकर काम का आर्डर ले आती हैं और घर से काम पूरा करके दे आती हैं। इससे होने वाली आमदनी वह अपने पास ही रखती हैं। इस तरह से उनकी कमाई पहले की अपेक्षा बढ़ गई है।

हारोहाली का यह इंस्टीट्यूट एक मिसाल बन गया है। यहां ट्रेनिंग लेकर कितनी ही औरतों का जीवन सुधर चुका है। कर्नाटक के गांवों में भी देश के दूसरे गांवों की तरह औरत पर अत्याचार होता है। औरत का मानसिक व शारीरिक शोषण होता है व उसे पति की मारपीट सहनी पड़ती है। अब कितनी ही औरतें व लड़कियां यहां ट्रेनिंग लेकर इज्जत भरा जीवन गुज़ार रही हैं। □

नथिया ने गांववालों की अगुवाई की

जुही

हमेशा की तरह सुबह चार बजे उठकर रज्जो ने पास पड़ोस की औरतों को उठाना शुरू कर दिया। श्यामा, नज़मा, लक्ष्मी और जीतो, सभी अपने-अपने घड़े उठाकर तालाब की तरफ चल पड़ीं। यह उनका रोज का काम था।

सोनपुर गांव में पिछले साल चुनाव के समय पाइप लाइन डली थी। बरमे और नल लगे थे। पर पानी आज तक नहीं आया था। गांव की औरतें सुबह तड़के उठकर तालाब पर जातीं। तालाब में झिरी खोद-खोद अंजुलि में पानी ले लेकर घड़े भरतीं। तब कहीं सूरज उगने तक एक घड़ा पानी भर पाता था।

नथिया की नई-नई शादी हुई। ब्याह कर सोनपुर आई। दूसरे ही दिन सास को सुबह पानी भरने जाते देखा। उसे समझ ही नहीं आया आख़िर माजरा क्या है?

समस्या की गहराई

बात आई गई हो गई। पर रोज़ का यह चलन नथिया से बर्दाश्त नहीं हुआ। आखिर एक दिन हिम्मत कर उसने सास से पूछ ही लिया, "अम्मा, यहां नल तो है, फिर पानी क्यों नहीं आता।"

"पता नहीं बेटी, मैं क्या जानूं। सुना है यहां की ज़मीन नमकीन है, उस पर पानी की कमी है। बारिश भी कम होती है। कहीं-कहीं तो बिल्कुल ही नहीं होती। अधिकारी कहते हैं, पानी बहुत दूर है। यहां लाने में भारी खर्चा होगा।"

नथिया चुपचाप सुनती रही। पर मन में उसके एक तूफान सा उठ रहा था। वह बारहवीं क्लास पढ़ी थी। मायके में गांव की कार्यकर्ता के साथ मिलकर कुछ दिन काम भी कर चुकी थी। उसने निश्चय कर लिया। जो हो सो हो, पर इस समस्या का हल तो करना ही है।

दूसरे दिन मां से मिलने के बहाने नथिया अपने गांव गई। सारी बातें कार्यकर्ता दीदी सलमा को बताई। शाम तक दोनों मिलकर सोनपुर लौट आई। रात को ही चौपाल पर औरतों को गाने-बजाने के बहाने से इकट्ठा किया।

संघर्ष की तैयारी

सभी औरतों को पानी की तकलीफ थी, इसलिए सब सलमा और नथिया की बात ध्यान से सुन रही थीं। नथिया ने कहा, "हमें अपनी मदद आप करनी होगी। दो काम करने होंगे। हम

सलमा दीदी की मदद से पानी बोर्ड को अर्जी देंगे। जब तक गांव में पानी नहीं आएगा, रोज दो औरतें बोर्ड के दफ्तर जाएंगी। घर का काम निपटा कर बाकी औरतें चौपाल पर इकट्ठी हो जाएंगी।

"हम गांव में कई जोहड़ बनाएंगे। इससे बारिश के दिनों में थोड़ा बहुत पानी रुकेगा। धीरे-धीरे जमीन के नीचे के पानी का स्तर उठेगा। हमारी कुछ तकलीफ़ कम हो जाएगी।" कुछ हिचकते हुए सबने मदद करने का वादा किया। पर दूसरे दिन नथिया, सलमा और उसकी सास के अलावा कोई नहीं आया।

लंबी लड़ाई

नथिया ने अपनी सास और सलमा दीदी को अर्जी देने के लिए रवाना कर दिया। और खुद अकेली जुट गई। मिट्टी खोदी, तसले में भरकर जोहड़ बनाने वाली जगह डाल देती। शाम तक वह इसी तरह जुटी रही। भूखी, प्यासी। रज्जो से देखा न गया। दूसरे दिन सुबह वह भी कुदाली ले आ गई। इस तरह एक-एक दो-दो करके गांव की सभी औरतें जुट गई। दो दफ्तर जातीं, बाकी जोहड़ बनातीं।

कुछ ही दिन में जोहड़ तो बन गया। पर सरकारी अफसरों पर कोई असर नहीं हुआ। वे टालते रहे। महीनों गुजर गए, औरतें उकताने लगीं। पर नथिया ने हिम्मत नहीं हारी। समझाया-बुझाया। थोड़ी और हिम्मत करो। पानी जरूर आएगा। हम बोर्ड के दफ्तर के सामने भूख-हड़ताल करेंगे, नारे लगाएंगे।

ऐसा ही किया गया। औरतों ने कनस्तर पीटे। नारे लगाए, रास्ता रोका। किसी कर्मचारी को अंदर से बाहर निकलने नहीं दिया।

अफसर परेशान हो गये। थक कर, पुलिस को फोन किया। पुलिस आई। औरतों ने पुलिस को घेर लिया। मंत्री जी आए। काले झंडे दिखाकर उनका स्वागत किया। नारे लगाए।

मंत्री जी भले आदमी थे। उन्होंने औरतों की बात मान ली। अफसरों को आदेश दिया। गांव में तीन महीने तक पूरी पानी की व्यवस्था हो जानी चाहिए। काम शुरू हो गया। बरसात भी शुरू हो गई थी। बरसात ने थोड़े पानी का जुगाड़ किया। और तीन महीने बीतने से पहले गांव में पानी आ गया।

नथिया ने सारे गांव की अगुवाई की। सबने उसकी खूब तारीफ की। नथिया की गांव में इज्ज़त बढ़ी। नथिया होशियार थी, उसने मौके का पूरा फ़ायदा उठाया। गांव में एक महिला मंडल बनाया। लोगों को समझाया, छोटे बच्चों को पढ़ने भेजो। बेटियों की देखभाल, प्यार दुलार में कमी न रखो। इन्हें बोझ न समझो। जब हम अपने बेटे-बेटी की एक सी परवरिश करेंगे तभी तो खुशहाली आएगी।

पानी के बाद राशन की लड़ाई

उसकी लड़ाई सिर्फ पानी पर ही खत्म नहीं हुई। अब उसने गांव में लाला की दुकान के आगे नारे-बाजी करनी शुरू की है। कारण—लाला मिट्टी के तेल में पानी मिलाता है, हल्दी में पीला रंग। गेहूं, चावल तो कभी भी उसकी दुकान में मिलता ही नहीं है। सब लोग परेशान रहते हैं। इस बार लड़ाई में उसके साथ मर्द भी शामिल हैं। वे सब जान गये हैं कि हाथ पर हाथ धरे रहने से कुछ नहीं होगा।

पूरा राशन मिले, तेल मिले, सही दाम पर मिले

यह तो औरतों की मांग है ही। साथ ही औरतों के नाम पर राशन कार्ड बनाने की मांग भी रखी है। राशन की दुकान का कब्ज़ा महिला मंडल के हाथ में दिया जाना चाहिए जिससे कोई धांधली न हो पाए।

अधिकारीगण इस बात को मानने को राज़ी नहीं हैं। इसलिए नथिया का कहना है, हम हार नहीं मानेंगे। अपना हक़ लेकर ही दम लेंगे। इसके लिए चाहे हमें अपनी जान ही क्यों न देनी पड़े।

नथिया के हौसले बुलंद है। वह अकेली भी नहीं है। सारा गांव उसके साथ है। और इसी के सहारे वह आगे बढ़ती जा रही है। □

नीलम की चतुराई

बहुत पुरानी बात है। एक गरीब आदमी कल्लू ने महाजन से कुछ रुपए उधार लिए थे। उसे उम्मीद थी कि कभी पैसा बरसेगा, उसके दिन फिरेंगे और वह अपना उधार चुका देगा। महाजन लगातार कल्लू की मदद करता रहता था। पर ऐसा वह सिर्फ अपने फ़ायदे के लिए कर रहा था। उसे पता था कि कल्लू की एक बहुत खूबसूरत बेटी नीलम है। गांववाले उसे परी कहते हैं, उससे बात करके बहुत खुश रहते हैं।

महाजन चाहता था कि किसी तरह वह उस लड़की से शादी कर ले। इसलिए वह चाहता था कि सूद की रकम काफी ज्यादा हो जाये। ज्यादा रक़म कल्लू चुका नहीं पायेगा और वह बदले में नीलम का हाथ मांग लेगा।

एक समय आया, जब महाजन को लगा कि कर्ज़ का पैसा काफी ज्यादा हो गया है। इसलिए वह पैसा मांगने कल्लू के घर गया। वहां उसने अपने पैसे मांगे। कल्लू बेचारे के पास आंसू बहाने के अलावा कोई रास्ता नहीं था। महाजन ने मौके का फायदा उठाया। दया दिखाते हुए एक हल सुझाया।

उसने कहा, "अगर तुम मेरा पैसा वापस नहीं कर सकते तो बदले में नीलम की शादी मेरे साथ कर दो। याद रखो, सपने में भी तुम्हें इतना धनी दामाद नहीं मिलेगा।"

कल्लू और नीलम चक्कर में पड़ गये। महाजन भांप गया कि कल्लू और नीलम सीधे रास्ते उसकी बात नहीं मानेंगे। इसलिए उसने एक योजना बनाई।

उसने कहा, "हमें यह फैसला भगवान पर छोड़ देना चाहिए। मैं एक थैले में एक सफेद और एक काला पत्थर रखूंगा। नीलम उस थैले से एक पत्थर निकालेगी। काला पत्थर निकलेगा तो नीलम को मुझसे शादी करनी होगी और मैं तुम्हारा कर्ज़ माफ़ कर दूंगा। सफेद निकलेगा, तो भी मैं कर्ज माफ़ कर दूंगा और नीलम को मेरे

साथ शादी नहीं करनी पड़ेगी। पर अगर तुमने मेरी बात नहीं मानी तो मैं पुलिस में रपट लिखाकर तुम्हें जेल भिजवा दूंगा। अब तुम जो चाहो सो करो।''

महाजन यह कहकर चला गया। पर कल्लू और नीलम परेशान हो गये। पर क्या करते, दूसरा कोई रास्ता भी तो नहीं था।

कुछ गवाहों को बुलाया गया। सब एक मैदान में गए। वहां ज़मीन पर पत्थर ही पत्थर पड़े हुए थे। महाजन ने दो पत्थर उठा लिए। कल्लू तो यह नज़ारा देखना ही नहीं चाह रहा था, सो उसने डर के मारे अपनी आंखें ही बंद कर ली थीं।

गवाहों ने ध्यान नहीं दिया, पर नीलम ने देख लिया था कि महाजन ने दोनों काले पत्थर उठा लिए हैं। एक काला और एक सफेद पत्थर उसने नहीं उठाया है।

नीलम सोच में पड़ गई। अगर वह महाजन की करतूत सबको बता दे, तो महाजन नाराज हो जायेगा। गुस्से में वह कल्लू को कर्ज की वसूली के लिए जेल भिजवा देगा। अगर वह इस खेल में हिस्सा लेने से इंकार करे, तब भी महाजन अपनी मनवा कर रहेगा। और अगर पत्थर निकालेगी तो बूढ़े महाजन से उसे शादी करनी पड़ेगी।

उसने सोचा, क्यों न चाल का जवाब चाल से ही दिया जाए। इससे महाजन को सबक भी मिल जाएगा।

उसने थैले के अंदर हाथ डाला और एक पत्थर निकाला। दूसरे ही पल उसने पत्थर को हाथ से छूट कर गिर जाने दिया। पत्थर गिरकर दूसरे पत्थरों में मिल गया।

''कितनी मूर्ख हूं मैं,'' नीलम ने रोते-रोते कहा। ''चुना हुआ पत्थर तो खो गया, अब क्या करें''। फिर रुककर बोली, ''पर उससे कोई फर्क़ नहीं पड़ता, अगर हम थैला देखें तो पता लग जाएगा कि कौन सा पत्थर बचा हुआ है। अगर सफेद है तो खोया हुआ पत्थर काला है। और अगर काला है, तो सफेद पत्थर खो गया है।''

गवाहों ने भी हामी भरी, कि यही ठीक रहेगा। महाजन की स्थिति बहुत अजीब सी रह गई। वह मायूस हो गया। थैले में से काला पत्थर निकला। गवाहों ने फैसला सुनाया, ज़मीन पर सफेद पत्थर गिरा था। शर्त के मुताबिक कल्लू का सारा कर्ज़ माफ़ कर दिया जाये। नीलम को महाजन से शादी भी नहीं करनी पड़ेगी।

महाजन हाथ मलता चला गया। उसे अपने धोखे का सबक मिल चुका था। नीलम की चतुराई ने न सिर्फ उसे खुद को महाजन के चंगुल से बचाया बल्कि अपने पिता को भी कर्ज़े के बोझ से उबार लिया।

तमिल कहानी से अनुदित
निशित कुमार

इलाज के पारंपरिक तरीके

एन. बी. सरोजिनी

कुछ सदियों पहले तक डाक्टर, अंग्रेजी दवाइयां, सुईयां या आले नहीं थे। इसका मतलब यह नहीं कि इलाज करने वाले नहीं थे। इलाज हम सबके हाथ में था। घरेलू मसालों, जुड़ी-बूटियों और काढ़ों से इलाज होता था। घर के बूढ़े-बूढ़ियों से यह ज्ञान बच्चों को मिलता था। फिर उनके बच्चों को। इस तरह परंपरा चलती रहती थी।

कुछ ख़ास तकलीफ़ों या बड़ी बीमारियों के लिए सयाने लोग होते थे। जैसे मोच उतारने वाला या हड्डी बैठाने वाला। सांप का ज़हर उतारने वाला या जचगी कराने वाली दाई। कुछ वैद्य और हकीम होते थे। ये सभी लोग भी अपने ही होते थे। यानि कोई काका या चाचा या अम्मा और ताई। इनसे न कोई डर था, न इन्हें कोई घमंड। सेहत हर किसी का मसला थी। इलाज के कई तरीके जैसे आयुर्वेद, यूनानी, सिद्ध, प्राकृतिक चिकित्सा सब साथ-साथ फलते फूलते थे।

आधुनिक इलाज

फिर आया इलाज और जांच का आधुनिक तरीका। जिसे एलोपैथी कहा जाता है। इसमें दवा का असर चटपट दिखाई पड़ता है। हालांकि कई बार कुछ और तकलीफ़ें पैदा हो जाती थीं। लोग इसकी तरफ़ दौड़ पड़े। जल्दी ही इसने सारी दुनिया पर अपना कब्ज़ा कर लिया। इसके जादू में बंध कर लोग इलाज के पुराने तरीकों को मूर्खता कहने लगे। जड़ी-बूटियों को कचरा-कूड़ा समझने लगे। अब सारा ज्ञान सफेद कोट पहनने वाले डाक्टर साहब के दिमाग में कैद हो गया। पैसा दो और इलाज पाओ।

इलाज का यह तरीका गोरे विदेशी शासक लाए थे। उन्होंने भी यहां के पारंपरिक तरीकों को खत्म करने में कोई कसर न छोड़ी। उनकी नज़र में काले भारतीय मूर्ख थे। तो उनका ज्ञान महत्वपूर्ण कैसे होता? नतीजा यह हुआ कि धीरे-धीरे पारंपरिक तरीके मरने लगे। घर के बड़े-बूढ़े अपना ज्ञान भूलने लगे। इन तरीकों पर से हमारा विश्वास उठने लगा।

पारंपरिक इलाज

पुराने तरीकों में इलाज सिर्फ़ दवाइयों से नहीं होता था। उसके पीछे आपसी विश्वास और संबंध भी होता था। उस इलाके के मौसमों की समझ होती थी। सर्दी-गर्मी की तासीर की जानकारी होती थी। बीमार और इलाज करने वाला मिल कर काम करते थे। यह रिश्ता सिर्फ़ दो आदमियों के बीच में नहीं था। बल्कि आदमी और प्रकृति के बीच होता था। देखा गया है कि अलग-अलग इलाकों में मौसम के हिसाब से खाने की चीज़े बदलती हैं। वहां की आम बीमारियों के हिसाब से कुछ खास जड़ी-बूटियां उगती हैं। अलग-अलग समय में उनकी चटनी बना कर या भून कर खाने का रिवाज़ है। यानि खान-पान के ढंग रीति-रिवाज सब सेहत से जुड़े होते थे। सेहत का मतलब था जीने का एक ढंग।

औरतों की बीमारियां

नए और पुराने दोनों तरीकों में एक खोट रहा। वह यह कि औरतों की बीमारियों की तरफ़ कम ध्यान दिया गया। सिवाय गर्भ और जचगी के उसकी तकलीफ़ों को वहम कह दिया। कुंआरी लड़की की बीमारियों में कहा जाता था—''शादी कर दो ठीक हो जाएगी।'' शादीशुदा औरत के लिए कहते थे—''गोद भरेगी तो सब ठीक हो जाएगा।''

इसके पीछे समाज का पितृसत्तात्मक नज़रिया था। जिसमें औरत को इंसान के रूप में नहीं बल्कि पत्नी और मां के रूप में देखा जाता है। औरत की बीमारियों को छुपाने का भी चलन था। उसकी बात करना शर्म की बात समझी जाती थी।

फिर भी चूंकि इलाज करने वाली घर की बड़ी-बूढ़िया होती थीं, वे औरत के दुख-दर्द समझती थीं। अनुभवी दाई तन और मन दोनों की पीर समझती थी। वह चुपचाप जड़ी-बूटियों से इलाज कर पाती थी। औरत भी खुल कर अपने मन की बात कह देती थी।

कुछ उदाहरण

आज भी बांदा ज़िले की आदिवासी औरतें माहवारी के दर्द के लिए एक ख़ास ढंग से पेट की मालिश करती हैं। हथेली और पगतली पर दबाव डालने से भी पेट का मरोड़ ठीक होता है। आंध्र प्रदेश में देहाती औरतें योनि की खुजली, सूजन, पानी जाना जैसी तकलीफों के लिए कम से कम तीस जड़ी-बूटियों के बारे में जानती हैं। पीढ़ियों से दाइयां मुश्किल से मुश्किल जचगी कराती आई हैं। आड़े बच्चे को भी पेट में ही सीधा कर देती हैं। गर्भ रोकने की भी कितनी ही दवाइयां देहाती औरतें इस्तेमाल करती आई हैं।

इन पुराने तरीकों और जड़ी बूटियों की जानकारी पर ध्यान नहीं दिया गया तो यह खत्म हो जाएंगी। आज जब अंग्रेजी दवाइयां बहुत मंहगी हो रही हैं, उनसे होने वाले नुकसानों का भी पता चल रहा है। इन पुराने तरीकों को दोबारा जिंदा करना पड़ेगा। अब ज़रूरत है ऐसी चिकित्सा व्यवस्था की जिसमें सबका मिलाजुला रूप हो। जो आम आदमी को आसानी से मिल सके जिसमें सभी नए पुराने तरीकों के फायदे हों। □

औरतों की वोट

ले मशालें चल पड़ीं बेदार बहनें देखिये
अब अन्धेरा जीत लेंगी मिल के बहनें देखिये

वोट की ताक़त समझ कर वोट देने जा रहीं
मिल के अब हम ज़िन्दगी अपनी बदलने जा रहीं

क्या हैं वादे क्या इरादे ये ज़रा समझाइये
औरतों के मसलों पर क्या सोच है बतलाइये

कौन जीते कौन हारे अपना है ये फ़ैसला
वोट की ताक़त ने ही हमको दिया ये हौंसला

नेक है सच्चा है जो है वोट का हक़दार वो
वादे अपने भूले ना है अपना उम्मीदवार वो

रोज़ी रोटी तालीम सेहत हम सभी के पास हो
औरतें यहां हैं बराबर ये हमें अहसास हो

हमारी शिरकत के बिना जम्हूरियत है नाम की
जो तवज्जो दे न हमको वो पार्टी किस काम की

सबला के लेखों पर एक चर्चा

कोख पर दूसरे के नियंत्रण की जरूरत नहीं

चर्चा करने के दौरान औरतों ने महसूस किया कि हम कितने बच्चे पैदा करें इसका फैसला करने का हक उन्हें होना चाहिए। पर यह अधिकार उन्हें नहीं मिलता। मर्द यह नियंत्रण अपने हाथ में रखते हैं। सरकार की परिवार नियोजन नीतियां भी हमारे ऊपर वज्रपात करती हैं। बड़े, पैसे वाले लोग दो बच्चे पैदा कर सकते हैं। पर हमारे यहां जितना बड़ा परिवार उतने कमाने वाले हाथ। हम ऑपरेशन नहीं करवाएंगे।

रही परिवार नियोजन की बात, तो क्या बच्चे हम अकेले पैदा कर लेती हैं। क्या मर्द की कोई जिम्मेदारी नहीं है। फिर ऑपरेशन सिर्फ हम ही क्यों कराएं। पुरुष सोचते हैं ऑपरेशन कराने के बाद औरत कमज़ोर हो जाती है, किसी काम की नहीं रहती। जागरूकता आ जाने से यह बात हम औरतें तो समझ गई हैं। पर पुरुष को यह समझाना मुश्किल है।

सरकार को चाहिए कि कानून बना दे कि ऑपरेशन पुरुष ही कराएं। ऑपरेशन कराने पर उन्हें सरकार सुविधाएं देगी। इससे औरतों के ऊपर दबाव कम हो जाएगा। जिंदगी में थोड़ी राहत और सुख नसीब होगा। पुरुष तो ऑपरेशन के बाद आराम भी करता है। पर हम परहेज नहीं कर पाते, पूरा आराम नहीं कर पाते।

किताबों का बक्सा

इस लेख को सभी औरतों ने पसंद किया, पर वे इसे अपने आप से जोड़ नहीं पाईं। दहेज में कोई भला किताबें कैसे ले जा सकता है। वैसे भी लोग बाहरी दिखावे पर ज्यादा जाते हैं। लड़की चाहे अवगुणी हो, दहेज ले आये तो किसी को अखरती नहीं है। शुरू में गुणवान लड़की, अगर वह बिना दहेज लाई गई हो तो इज्जत नहीं होती। यह तो बाद में पता चलता है कि कौन सी ज्यादा बेहतर है, बाहरी या अंदरूनी सुंदरता।

वोट देना हमारा हक़ भी

राजस्थान में चुनाव हो रहे हैं। 30 फीसदी सीटें औरतों के लिए रिजर्व हैं। पिछले चुनावों के दौरान नियम अनुसार दो औरतों का पचांयत में होना जरूरी है। ये औरतें चुनकर नहीं, बल्कि गांव की

बड़ी- बूढ़ी होती थीं जिन्हें पंचायत वाले चुन लेते थे। इन्हें न अपने हकों की जानकारी होती थी, न ही वे जानने की इच्छा रखती हैं।

अब काया पलट हो गई है। पर अब इन औरतों को लोगों के ताने सुनने पड़ते हैं। लोग कहते हैं, ये औरतें राज नहीं कर पाएंगी। आपस में लड़-मरेंगी। इस सबसे औरतों की जिम्मेदारी और बढ़ गई है। औरतों को साबित करना होगा कि वे अपनी पर आ जाएं तो कोई काम मुश्किल नहीं।

औरतों की स्थिति में बदलाव

विजयनगर गांव की औरतों का मत है कि बदलाव तो आया है, पर उतना नहीं जितना कि लोग चाहते हैं। सभी चीजों की बागडोर मर्दों के हाथ में है, इसलिए संघर्ष और ज्यादा कठिन हो जाता है। औरत बुद्धिमान, मेहनती होती है। चूंकि मर्द कमज़ोर होता है इसलिए इस कमजोरी को छुपाने के लिए औरतों को आगे बढ़ने से रोकता है। मर्दों के बराबर आने के रास्ते कठिन जरूर हैं, पर नामुमकिन नहीं। इसलिए हमें कोशिश करते रहना होगा। इसी के साथ अपनी कमाई पर अपना अधिकार लेख को जोड़ते हुए औरतों ने कहा, आदमी के जीते जी यह होना मुश्किल है। अपने इस महत्वपूर्ण अधिकार को छोड़ देना इतना आसान नहीं होता।

बदलाव की शुरुआत घर से करें

चर्चा से निकलकर आया कि थोड़ा फर्क समाजीकरण में आया है। अब लड़कियों को लोग पढ़ाने लगे हैं। थोड़ा बदलाव इसलिए भी आया है क्योंकि लड़के अनपढ़ लड़की से ब्याह नहीं करना चाहते। हर मां-बाप पढ़ी-लिखी बहू चाहते हैं। अनपढ़ होने पर लड़की कुंवारी रह जाने पर मां-बाप को परेशानी होती है। इसलिए उन्हें अपने आप को बदलना पड़ता है। इसलिए हर घर में बदलाव आना ही चाहिए।

ससुराल में बहू घुट-घुट कर क्यों जीए

गांव नगला लोधा में सभी भाग लेने वाली औरतों का कहना था कि आजकल की बहुएं आते ही अलग हो जाती हैं। वह किसी की बात नहीं मानतीं। कोई एक-आध ही ऐसी होती है जो सास-ननद की बात सुनती है। कोई भी लड़की दबाव में रहना पसंद नहीं करती। आज उसमें इतनी हिम्मत है कि वह बिना मर्द के सहारे अपनी जिंदगी जी सकती है। घर-बाहर दोनों संभाल सकती है, जरूरत सिर्फ आत्मविश्वास जगाने की है।

औरतों को सबसे ज़्यादा पसंद वे लेख आये जो उनकी समस्याओं से संबंधित हैं जैसे शराब की बिक्री पर रोक, भंवरी साथिन, चिपको आंदोलन, सहारनपुर की ऊषा धीमन की लड़ाई। इन सभी मिसालों से महिलाओं की हिम्मत बढ़ती है क्योंकि मुसीबतों से कम औरतें ही लड़ पाती हैं, ज्यादातर हार कर बैठ जाती हैं। इन लेखों पर चर्चा पंचायत समिति सेवर (भरतपुर, राजस्थान) के कुछ गांवों के महिला समूहों से की गई थी।

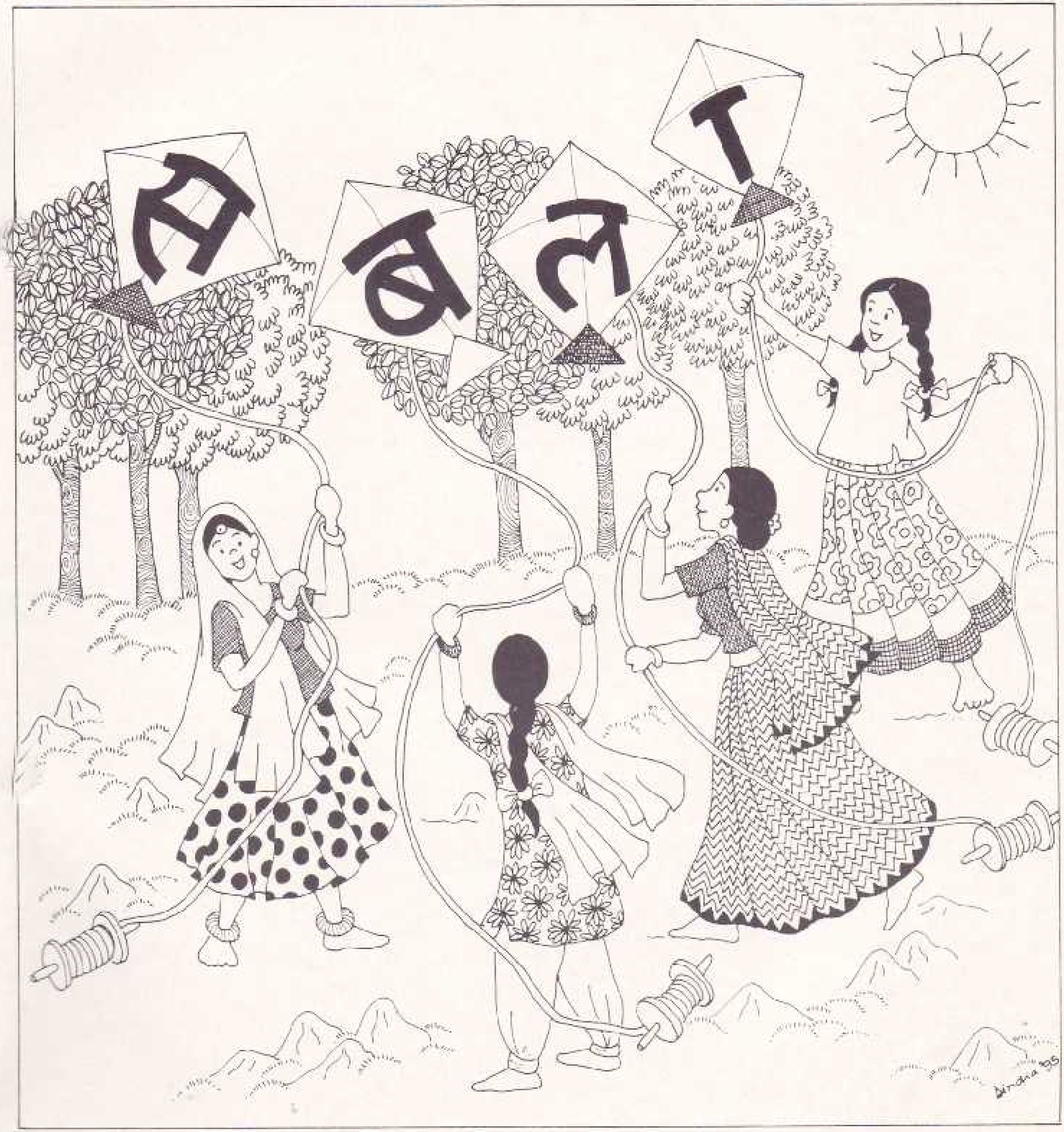
स
ब
ल
ा